Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

12 अक्तूबर 2009

ईशावास्यं इदं सर्वम्

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'मैत्री' के इस अंक में

वर्ष – 46, अंक – 10
12 अक्तूबर 2009

: संपादक-मंडल :
देवी, शीला, कंचन

: प्रकाशक :
चन्नम्मा हल्लिकेरी,
ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार

: मुद्रण :
परंधाम मुद्रणालय, पवनार

: संपर्क :
'मैत्री', ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार
(वर्धा) 442111
फोन – 07152-288388,
288181

: वार्षिक चंदा :
120 रुपये

: विदेश के लिए :
सामुद्री डाक – 10 डॉलर
हवाई डाक – 20 डॉलर
नेपाल, भूटान, बांगलादेश – 600 रुपये
प्रति अंक : 15 रुपये

विनोबा

343 कृष्णार्जुन-संवाद
343 प्रश्नोपनिषद
346 शांतिसेना का अक्षय बीज : [1]

नित्य स्तंभ

आश्रम-वृत्त

367 ब्रह्मविद्या-मंदिर, पवनार : शीला

338 प्रभु तरुतल कपि डार पर... : महादेव देसाई
349 वैष्णवजन तो तेने रे कहिए... : शीला
353 गुण-विकास-योग : गीता
356 'वे हुक्म देते और मैं करता' : कुसुम
360 स्वाध्याय 'विचारपोथी' का : मीरा
362 ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्याय : [2] : उषा
368 श्रद्धांजलि :–
कवर 3 पुण्यतिथि-पर्व – मित्र-मिलन : कंचन

[सितंबर-अक्तूबर का मुखपृष्ठ – उज्ज्वल बा. चंदावार, पूणे]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्मशुद्धि का सतत प्रयत्न करके मैंने अंतरात्मा की सच्ची और स्पष्ट आवाज सुनने की कुछ शक्ति विकसित की है।

ईश्वर की आवाज सुनने का मेरा दावा कोई नया नहीं है। मेरा अनुभव है कि स्वेच्छा से जो उसका दास बनता है, उसे कठिन से कठिन अग्निपरीक्षा में से गुजरने का सामर्थ्य दिये बिना वह रहता नहीं। पचास वर्षों से भी अधिक समय से इस कसकर काम लेनेवाले मालिक का मैं राजीखुशी से गुलाम बना हूं। बरसों बीतते गये, वैसे-वैसे उसकी आवाज मुझे अधिकाधिक सुनायी दे रही है। घोर से घोर अंधकारभरे क्षण में भी उसने मुझे छोड नहीं दिया है। कई बार तो उसने मुझे अपने खुद के सामने भी बचा लिया है। अपनी कह सकूं ऐसी नाममात्र की भी स्वतंत्रता उसने मेरे लिए रहने नहीं दी है। जितना ज्यादा मैं उसकी शरण में गया हूं, मेरा आनंद उतना ही बढता गया है।

गांधीजी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

[सन् 1933 में 8 मई को आगाखां पॅलेस में बापू ने अस्पृश्यता-निवारण के संबंध में अपनी तथा आंदोलन की आत्मशुद्धि के लिए इक्कीस उपवास किया था। बापू ने साथियों के सामने अपना निश्चय जाहिर किया तब स्वाभाविक रूप से, प्रेमबस जो तीव्र प्रतिक्रियाएं उठीं, उग्र चर्चाओं का दौर चला, जो प्रेमाक्रमण हुआ और इन सबका समाधान करते हुए बापू अपनी भूमिका बताते हैं – इन प्रेरक एवं रोचक संवादों का अत्यंत निखालिस वर्णन महादेवभाई ने अपनी डायरी में किया है। उसका कुछ अंश यहां दे रहे हैं। बापू जैसे लोकोत्तराणां पुरुष के पास स्वजन-साथी कितनी निर्भयता से निःसंकोच अपनी बात रख सकते थे, समय पर उनके साथ झगड भी सकते थे, ऐसा अभूतपूर्व दृश्य बापू की स्वयंभू नम्रता का प्रेमोज्ज्वल दर्शन कराता है। तुलसीरामायण की याद आती है, **प्रभु तरुतल कपि डार पर, ते किये आपु समान...** बाकी महापुरुषों के व्यक्त क्रियाकलापों के पीछे, नेपथ्य में परम अव्यक्त शक्ति उन्हें अपना माध्यम बनाकर किस प्रकार काम कर रही होती है, यह खुद महापुरुषों के सिवा कौन जान सकता है ?

मुहम्मद पैगंबर के विषय में बोलते हुए विनोबाजी ने कहा है कि "परमेश्वर का संदेश मनुष्य के हृदय पर सवार होता है, उस चीज को अरबी में 'वही' कहते हैं। उसमें इतनी घोर वेदना होती है, जिसकी उपमा प्रसूति-वेदना से दे सकते हैं। ऐसा महसूस होता है कि हम अपने को बिलकुल खो रहे हैं। कोई चीज हम पर हावी हो रही है। ऐसी कोई चीज जिसे हम टालना चाहते हैं तो भी टाल नहीं सकते।" – इसी तरह की वेदना का जो अनुभव बापू को आया, उसकी कुछ दुर्लभ झांकी यहां उनके हृद्गत में मिलती है। – संपा.]

प्रभु तरुतल कपि डार पर ....

महादेव देसाई

"अंदर से बराबर आवाज आया करती थी कि उपवास कर, उपवास कर। यह कोई तीन दिन से मंथन चल रहा था। 'चालीस उपवास करूं या इक्कीस?' जवाब मिला, 'इक्कीस ही कर ! – गर्भिणी के पेट में बच्चे के हिलने–डुलने से जैसी व्याकुलता होती है, वैसी व्याकुलता हो रही थी। लगता था कि कहीं पागल तो नहीं हो जाऊंगा ! तीन दिन से नींद जाती रही। मानो आदमी की मरने की तैयारी हो रही थी !"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रात को देरी से सोया था इसलिए सुबह प्रार्थना के बाद बापू ने मुझे सोने के लिए भेज दिया। तब मुझे कल्पना भी नहीं थी कि एक बडा प्रचंड झंझावात आ रहा है। साढे पांच बजे उठकर देखा, बापू वल्लभभाई के साथ घूमते हुए बोल रहे हैं। छः बजे तक घूमे। हम चुपचाप सुन रहे थे। एक शब्द भी बोले नहीं। बोलने जैसा कुछ लगा ही नहीं ! वातावरण में सन्नाटा फैल गया। अंदर ही अंदर धुंधवाते विचारों की वजह से हम सुन्न हो गये थे।

आधे घंटे के बाद सरदार की वाचा फूटी। कहा, "उनसे अधिक पवित्र पुरुष को देखा है ? ईश्वर उनको रखना चाहता है या ले लेना, किसको मालूम ? उनके हृदय और आत्मा का प्रवाह आज जिस दिशा में जोरों से बह रहा है, उसे मन-वचन-काया से हम मौनपूर्वक अनुकूल हों तो बस !"

फिर देवदास को वॉइसरॉय को लिखा पत्र देते हुए बापू कहने लगे – "देख, वल्लभभाई और महादेव ने जरा भी चर्चा नहीं की। वैसे तू भी इसे शांति से पढ ले और समझ ले कि चर्चा करना बेकार है।"

देवदास एक बार पढ गया, दूसरी बार पढ गया। थोडी देर के बाद वाग्धारा चली। बहादुर बाप का बहादुर बेटा बाप को अमित शब्दों में उपालंभ देने लगा। रोता जाये और बोलता जाये। बोलने में आवेश, क्रोध, दुःख और तीव्र वेदना थी। रोना रुके तब बोलता और बोलना रुके तब रोता !!

बापू बोले, "भाई ! इक्कीस दिन का या चालीस दिन का, यह द्वंद्व तो एक महीने से चल रहा है ! क्या सभी विचार मनुष्य दूसरों को बता सकता है ? तीन दिन हुए, घंटों नींद नहीं। भीतर आग जल रही थी। जाने कोई महाप्रलय की तैयारी चल रही है ! अनशन के विचार आते और मैं उन्हें मन से निकालता रहा। रात को सोने गया तब मालूम नहीं था कि आज कुछ होने जा रहा है। ग्यारह बजे जग गया। रामनाम तो चल ही रहा था, मंथन भी जोरदार चला था – उपवास क्यों नहीं करता ? साढे बारह बजे स्पष्ट आवाज आयी, तुम्हें उपवास करने के अलावा कोई चारा नहीं। आवाज सुनने के बाद द्वंद्व समाप्त हो गया, वेदना शांत हो गयी। और मैं अपने को बिलकुल हलका महसूस करने लगा। हृदय उल्लास से भर गया। इक्कीस उपवास करने हैं, कबसे करने हैं, कैदी की हैसियत से मेरा धर्म क्या है – सब साफ समझ में आ गया। इतना नहीं करूंगा तो हरिजनसेवा के काम में गंदगी घुस जायेगी।"

"और मेरे अकेले के मरने से काम नहीं चलेगा। चल जाये तो मेरा महापुण्य माना जायेगा। परंतु बात तो त्रास (आतंक) पैदा करने की है। हिंसक भी क्या करता है ? लोगों के मन में त्रास पैदा करता है। अहिंसक भी यही करता है। दूसरा उपाय नहीं। हृदय दूसरी तरह से हिलता ही नहीं ! जैसे हजारों की हत्या होती है और 'ओह!' कहते हुए हम जाग उठते हैं, वैसे ही हजारों मरने को तैयार हों जाये, तभी चमत्कारी असर होगा। उपवास की छाया के नीचे तो पाप के बडे-बडे थर उखड जायेंगे। और लोगों की आंखों पर पडा पर्दा उठ जायेगा।"

देवदास – यह सब आप भले ही समझाइए। पर मुझे तो यह वचनभंग लगता है। आपसे कई बार कहा, पूना-करार का अमल करने दीजिए। अभी उसे छः महीने भी नहीं हुए, और आप वचन दे चुके हैं कि मैं इस तरह एकाएक उपवास नहीं करूंगा। पर बात यह है कि आपका मन कमजोर हो गया है। आपको और कुछ सूझता ही नहीं। घूमफिरकर आप उपवास पर ही आ जाते हैं ! मैं आपसे कहता हूं, आपका यह वक्तव्य पढकर मुझ पर बडा खराब असर हुआ है। आप मानते हैं कि लोगों में जागृति आयेगी, पर मैं कहता हूं कि इससे दंभ पैदा होगा। आपकी भूलों से किसी की आध्यात्मिक उन्नति नहीं होगी।

आप हमारे साथ अन्याय कर रहे हैं। हमें नाहक इतनी बडी सजा दे रहे हैं। साफ-साफ यह कहने के बजाय कि अब मैं निराश हो गया हूं, आप कहते हैं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि मैं आत्मशुद्धि के लिए उपवास कर रहा हूं !! सारी चीज मुझे सडी हुई मालूम होती है !

बापू खिलखिलाकर हंसते जाते हैं।

देवदास – इस तरह बात को हंसी में क्यों उडाते हैं? आप जब मुझे नहीं समझा सकते तो दूसरे आपकी इस बात को क्या समझेंगे? आपसे बहस में कोई जीत नहीं सकता।

बापू – ... संभव है इसमें दंभ हो, लेकिन तब तो मेरा ऐसा अंत होना ही चाहिए !

देवदास – आप ऐसी ऐसी बातें कहकर जिस चीज का बचाव नहीं हो सकता, उसका बचाव करते है ! यह तो साफ मूर्खताभरी बात है।

बापू – एक करोड मूर्ख मूर्खतापूर्ण उपवास करें और बाद में एक सच्चा मनुष्य उपवास करे तो वह जगत का उद्धार कर देगा।

देवदास – किंतु कोई तारतम्य भी होगा कि नहीं?

बापू – अरे भाई ! तिनके पर मेरु को धारण करनेवाले की तारतम्य बुद्धि कुछ और ही तरह की होगी न ?

महादेव – आप इस बात को जब अटल वताते हैं, तब फिर दूसरे की हिम्मत ही क्या जो आपके साथ बहस करे ? सच कहूं तो क्या आपके साथ कोई झख मारने को बहस करे? आप तो सबको बेवकूफ समझकर एक निश्चय कर लेते हैं और कह देते हैं "लो, यह अटल है !"

बापू – महादेव, महादेव ! तुम इतना क्यों नहीं समझते कि अटल का अर्थ यह नहीं कि नीति की कसौटी पर कसने से वह ठीक मालूम न हो तो मैं बदल नहीं सकता। पर कोई बता तो दे कि यह उपवास गलत है !

महादेव – गलत बात क्यों कर रहे हैं ? सुबह ही तो आप सरकार को तार दे चुके हैं।

बापू – मैंने ऐसे निश्चय बदले नहीं है क्या ?

महादेव – उपवास का निश्चय कभी बदला है?

बापू – नहीं। पर यह तो इसलिए कि कोई यह बता नहीं सका है कि उपवास गलत है।

देखो, दक्षिण अफ्रिका में जब समझौता हुआ, उस वक्त एंन्ड्रूज से मैंने कहा, यह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया जा सकता। फिर मैंने वैसा जवाब भी दे दिया। जनरल स्मट्स के घर से लौटते वक्त पहाडी पर से उतरते हुए मुझे आवाज सुनायी दी – "यह क्या मूर्खता कर रहे हो? यह तो ठीक है !" – मैंने तुरंत ही एन्ड्रूज को खडा रखकर कहा," मैं तो बेवकूफी करने जा रहा था। फिर स्मट्स से भी यही बात की और उससे माफी मांगी।

इसी तरह बारडोली के वक्त हुआ। रेडिंग को खबर दे चुके थे। पर देवदास का पत्र आया और मैंने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। दुनिया की हंसी भी सहन कर ली।

महादेव – लेकिन आप कहते हैं कि आपकी भूल आपको बतायी जाये। आप तो इस तरह त्रास पैदा करके दुनिया की भूल बताकर उसे सावधान करना चाहते हैं। पर हम आपमें कैसे त्रास पैदा करके समझायें कि आपकी गलती हो रही है !

बापू – यह तो तुम जानो। तुम्हें कोई तरीका ढूंढना चाहिए। सच बात तो यह है कि उपवास की शस्त्र के रूप में प्रतिष्ठा लोप हो गयी है, इसलिए वह तुरंत समझ में नहीं आती।

देवदास – आप घूमाफिराकर उसी बात पर आ जाते हैं। जब निश्चय ही करके बैठे हैं तो फिर दलीलें और कारण तो मिल ही जाते हैं !

बापू – अरे भाई, मुझे उपवास करने की फुरसत नहीं है। मेरी कलम भी नहीं रुकी, जबान भी नहीं थकी, काम का ढेर पडा है। पर उपवास आकर सामने खडा ही हो गया, तब क्या किया जाये ? और मुझे तो बच्चा भी समझा सकता है। भाई, जिस पाप को

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धोना है, उसके लिए यही उपाय हो सकता है। इस तरह कई लोग उपवास करेंगे, तभी यह पाप धुलेगा। पर तू चाहे तो बुला ले राजाजी को, मथुरदास को। मथुरदास तो ऐसा है कि जो अच्छी से अच्छी बातों में से भी दोष निकाल दें।

देवदास – अच्छी से अच्छी बात में दोष तो आप निकाल रहे हैं ! मुझे ऐसों की जरूरत नहीं।

बापू – तो विनोबा को बुलवा ले। वह मुझे समझा दें कि भूल हुई है तो मैं जरूर उपवास छोड दूंगा।

* *

काका (कालेलकर) – निवेदन तीन बार पढ गया। आप जब ईश्वर का आदेश है ऐसा कहते हैं, फिर कुछ कहने का बचता नहीं। फिर भी मुझे इस उपवास में कठोरता और उतावली लग रही है। उसके पहले दुनिया को नोटिस दीजिए, कुछ कर दिखाने के लिए थोडा समय दीजिए। यह उपवास गलत है ऐसा मैं नहीं कहता, लेकिन असमय है ऐसा लगता है।

बापू – यह उपवास बिलकुल ही अलग प्रकार का है। आपने पढा लेकिन उस पर सोचा नहीं। उसमें नोटिस की दरकार नहीं। उसमें तो बहुत कुछ समाया हुआ है। मेरी कल्पना में तो गंगातीर पर की कांवर की भांति इस उपवास की शृंखला का अंत ही न हो, जब तक कि अस्पृश्यता का पूरा का पूरा नाश न हो।

काका – आपके साथ दलील करने से क्या निकलनेवाला है? वही कि आप अपनी भूमिका में और अधिक मजबूत बनेंगे ! मैंने तो अभी तक यही देखा है।

* *

बापू – मुझे तो प्रायश्चित्त करना है। नैतिक हेतु सिद्ध करने के लिए साधन भी नैतिक होने चाहिए। मैंने कह दिया है, मुझसे बहस न करना। मेरा निश्चय हैं। ऐसे ही पिछले (1924 में हिंदू-मुस्लिम एकता के संबंध में) 21 दिन के उपवास के समय सब हक्के-बक्के रह गये थे न ! किंतु क्या कोई यह कह सकेगा कि वे उपवास गलत थे? मुझे तो लगता है कि उन उपवासों ने उस समय तो काम किया ही, किंतु 5000 साल के बाद भी वे उपवास काम करेंगे !!

राजाजी – आप तो यह मानते दीखते हैं कि देहदमन और प्रतीतियों के बीच गूढ संबंध है। ऐसे देहदमन के विरुद्ध बुद्ध ने पहली आवाज उठायी थी।

बापू – सच्चा उपवास तब माना जाता है, जब चित्त और आत्मा का शरीर के साथ सहयोग हो। बुद्ध ने जो आपत्ति की थी, वह केवल शरीर के उपवास के विरुद्ध थी।

राजाजी – दस दिन के बाद क्या आप स्पष्ट विचार करने की शक्ति रख सकेंगे ?

बापू – पहले तो मैंने रखी थी। शुद्ध उपवास में विचार ज्यादा पवित्र हो जाते हैं। जिस आदमी का चित्त ईश्वर में लगा होता है, उसे जो चीजें शुरू में अंधकारमय दीखती हैं, वे धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगती है।

राजाजी – यह एक खास हद तक ही सच माना जा सकता है।

बापू – यह कहने में आप खतरनाक भूमिका ले रहे हैं। वैज्ञानिक का अनुभव आपको मानना चाहिए। जो मनुष्य पवित्र है, सत्यपरायण है और सत्य पर ही कायम रहना चाहता है, वह भौतिक विज्ञानवेत्ताओं के जैसा ही वैज्ञानिक है।

राजाजी – पर यह तो अस्वाभाविक स्थिति कही जायेगी।

बापू – पशुओं के लिए अस्वाभाविक हो सकती है, मनुष्य के लिए नहीं। आपको अदृश्य का दर्शन करना है तो अदृश्य होना पड़ेगा।

राजाजी – आपको अदृश्य का दर्शन करना है ?

बापू – हां, क्योंकि मुझे हरिजनों की सेवा उत्तम रूप से करनी है। सोलह करोड मनुष्यों के हृदय तक असर पहुंचाना ही चाहिए।

राजाजी – इन गूढ बातों की भी एक हद होती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बापू – मुझे गूढ तत्त्व से शर्म नहीं आती। आप तो यह कहना चाहते हैं कि गूढ तत्त्व मानना हानिकारक है !

राजाजी – हां, अगर उसका परिणाम मौत होता हो।

बापू – आप तो दूध और दही दोनों में पैर रखना चाहते हैं। बहस के लिए मैं कहता हूं कि आपकी बात मुझे मंजूर है कि आत्मघाती उपवास गलत है। लेकिन सब उपवास ऐसे नहीं होते। और यह उपवास मैंने स्वेच्छा से अपने ऊपर नहीं लिया। इसके लिए मुझे आदेश मिला है।

राजाजी – ठीक है। इस मामले में मित्र आपको सलाह दे सकते हैं क्या ?

बापू – अवश्य।

राजाजी – जिसमें मृत्यु की संभावना 80% है, वह एक प्रकार का जुआ ही है। आप कहेंगे कि यह अच्छा जुआ है। मुझे तो लगता है कि जेल में रहकर उसी एक विचार को घोटते रहने से लगता है, आप तारतम्यबुद्धि खो बैठे हैं। और आपमें प्रयोग करने का कुतूहल इतना दुर्दम्य है कि अब मौत के साथ भी उसे आजमा रहे हैं। खैर, ऐसा कोई है जो आपके इस कदम को पसंद करते हैं?

बापू – जरूर। डंकन और एन्ड्रूज ने इसे पसंद किया है।

राजाजी – उन लोगों के अभिप्राय की कितनी कीमत समझी जाये? इनसे तो मेरी राय कितनी ही बढकर है ! एन्ड्रूज को कमरे को ताला लगाना नहीं आता है और वे जीवन को ताला लगाने की बात करते हैं !

और आप भी ईश्वर के कानून पूरी तरह जानने का दावा कैसे कर सकते हैं? मैं तो कहता हूं कि आप ज्यादा सावधान रहें। ईश्वर की प्रेरणा हमेशा नहीं मिल सकती।

बापू – तो आप ईश्वरी प्रेरणा की संभावना तो मानते हैं न ! इसलिए आप केस हार गये !

राजाजी – किंतु बुद्धि के विरुद्ध प्रेरणा नहीं हो सकती।

बापू – मेरी बुद्धि के विरुद्ध नहीं है। धर्म भीतरी समझ की चीज है। वह हृदय की बात है। श्रद्धा की बात है। सनातन मूल्य की बात है। शरीर के रूप में हमारा कोई सनातन मूल्य नहीं है।

फिर बापू राजाजी के साथ खूब लडे, झगडे, आग बरसायी और क्रोध तथा आवेश के साथ बोले, "मेरी प्रतीतियों का आपको आदर करना चाहिए। आप तो मुझे अपनी प्रतीति एकाएक छोड देने को कहते हैं! मेरे साथ लडिए, बहस कीजिए; संभव है मैं भूल करता हूं। पर आप तो मुझे संभावित वस्तु को निश्चित रूप में मानने को कहते हैं ! अगर मैं इस निश्चितता के साथ उपवास करता हूं कि इस उपवास से मेरी मौत हो जायेगी, तो मैं झूठा हूं। जब तक आप मेरे विधानों को लेकर मुझे विश्वास न दिला दें कि इस चीज में मेरी भूल है, तब तक आपको मेरा विश्वास विचलित नहीं करना चाहिए। कोई भी मनुष्य ईश्वर के जैसी निश्चितता प्राप्त नहीं कर सकता। पर अपनी नाव का खेवैया तो मैं ही हो सकता हूं न ?

रात को बापू को बहुत अफसोस हुआ। सवेरे दो बजे उठकर राजाजी को माफीनामा लिखा।

* *

उपवास शुरू होने के पहले मीराबहन को बापू ने लिखा, "इस बार मेरे अंदर ऐसा आनंद प्रकट हुआ है, वैसा मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया। यह उपवास ईश्वर की अब तक की मुझे दी हुई भेटों में से सबसे बडी भेंट है। खुराक न लेना उपवास का अनिवार्य अंग जरूर है, पर उसका सबसे बडा अंग नहीं है। बडे से बडा अंग तो प्रार्थना, ईश्वर के साथ एकतार होना है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कृष्णार्जुन-संवाद

विनोबा

मिस्टिक एक्सपीरियन्स (गूढ अनुभव) के बिना बापू सेवाकार्य में नहीं लगे थे। वे कहते थे कि सत्य ईश्वर है। इसलिए लोग समझते हैं कि यह वैज्ञानिक बात है। परंतु वह सिर्फ वैज्ञानिक बात नहीं थी। एक दिन मैंने उन्हें ईश्वर के अनुभव के बारे में छेडा। "आप 'सत्य ईश्वर है' यह जो कहते हैं, वह ठीक है। परंतु उपवास के समय आपने कहा था कि 'अंदर से आवाज सुनायी दी', वह क्या बात है? उसमें गूढता है ?"

उन्होंने कहा, "हां, उसमें कुछ बात है। वह कोई साधारण चीज नहीं। मुझे स्पष्ट आवाज सुनायी दी। जैसे कोई मनुष्य बोलता है, वैसे ही सुनायी दी। मैं पूछता गया कि 'मुझे क्या करना चाहिए ?' तो आवाज आयी, 'उपवास करना चाहिए।' मैंने पूछा, 'कितने दिन का उपवास करना चाहिए ?' तो जवाब मिला, 'इक्कीस दिन'। यानी इसमें कोई पूछनेवाला था और दूसरा जवाब देनेवाला। बिलकुल कृष्णार्जुन-संवाद जैसा था।" बापू तो सत्यवादी थे, इसलिए कोई भ्रम नहीं हो सकता। उन्होंने कहा, "मुझे साक्षात् ईश्वर ने यह बात कही।"

फिर मैंने पूछा, "क्या ईश्वर का रूप हो सकता है?" वे बोले, "रूप तो नहीं हो सकता लेकिन मुझे आवाज सुनायी दी।" इस पर मैंने कहा, "रूप अनित्य है तो आवाज भी अनित्य है। अगर आवाज सुनायी दी तो रूप कैसे नहीं दिखायी देगा?" फिर मैंने उनके सामने कुछ जानकारी रखी। दुनियाभर के आत्मिक अनुभव और अपने भी अनुभव सुनाये।

*

प्रश्नोपनिषद

विनोबा

प्रश्न : क्षेत्र में काम करते हुए अंतर्मुखता का अनुभव नहीं आता। एकांत, ध्यान आदि की आवश्यकता महसूस होती है। क्या करें?

उत्तर : जब तक अंतर और बहिर् का विरोध बना रहेगा, तब तक 'मुख' ही नहीं बनेगा। ध्यान में आना चाहिए कि जो परमात्मा भीतर है, वही बाहर है। बाहर का आंखों में आयेगा तो भीतर का चित्त में समायेगा। आंखों के बिना परमात्मा भीतर नहीं जा सकता। संत कहते हैं बाहर जो परमात्मा है, उसे –

आंख न मूंदौं कान न रूंधौं तनिक कष्ट नहिं धारौं
खुले नैन पहिचानौं हंसि हंसि सुंदर रूप निहारौं।

यदि यह विरोध रहे कि बाहर ब्रह्म से भिन्न चीज है और भीतर ब्रह्म है, तो उसका अर्थ होगा, हमने ब्रह्म के दो टुकडे कर दिये, जो वास्तव में है नहीं। हम ही बाहर-भीतर का भेद खडा करते हैं।

मैं सदैव 'यात्री-मानस' की बात बताया करता हूं। भगवान हमारे पास ही हैं, पर हम उसे दूर ढकेलते हैं और कहते हैं कि 'भगवान के दर्शन के लिए बदरी-केदार जा रहे हैं।' वहां जाने के बाद कहते हैं, 'काशी की यात्रा के लिए जा रहे हैं !' वहां से फिर 'रामेश्वर जायेंगे।' यानी जो भगवान पास में है, उसे दूर ढकेलते रहते हैं। जैसा यह 'यात्री-मानस' होता है, वैसा ही 'ध्यानी-मानस' भी होता है। भगवान बाहर-भीतर सब जगह है, आंखों को दीख रहा है। पर वह कहता है, "मैं आंखें बंद करके उसे देखूंगा। इस तरह हम भगवान को अपने सामने से हटाते हैं और कहीं अंदर डाल देते हैं !

एक बार मैं दौलताबाद के किले पर गया था। वहां एक संतपुरुष की समाधि है। वे वहीं गुफा में रहते थे। मैं वह स्थान देखने गया। संत जहां बैठते थे, वहां मोमबत्ती लेकर जाना पडा। तनिक भी प्रकाश नहीं था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हमने पूछा, ये लोग प्रकाश से इतने डरते क्यों थे? प्रकाश से आंखों को तकलीफ होती हो, तो वह अलग बात है। उसके लिए दूसरी व्यवस्था की जा सकती है। लेकिन उसके लिए गुफा क्यों? यदि कहें कि जैसे घोडा हरी घास देखकर दौडता है, वैसे ही चित्त भी बाहर के विषय देखकर दौडता है, अतएव गुफा चुनी गयी; तो मैं पूछूंगा, 'आपका चित्त इतना उच्छृंखल क्यों ?' बाबा यह चीज कभी समझ ही नहीं पाता।

हमारे एक मित्र कश्मीर गये थे। उन्होंने कश्मीर का वर्णन लिखकर भेजा कि कितना सुंदर प्रदेश है, आदि। हमने उत्तर लिखा, 'तुम्हारे कश्मीर का जितना सौंदर्य है, बाबा के कश्मीर की कल्पना उससे अधिक सुंदर है। तुम देखते हो जड सृष्टि को, पर बाबा देखता है चेतन को। सुंदरता का स्रोत तो आंखों में है। यदि ब्रह्म चारों ओर है, तो कश्मीर जाने की जरूरत ही नहीं। यदि चारों ओर नहीं है, तो कश्मीर में भी नहीं है। उसका हमें आकर्षण नहीं।

ज्ञानदेव महाराज ने कहा है, *तूप कासया घुसळावें* यह तो घी है, उसका काहे को मंथन करते हो ? *अमृत कां रांधूनि अर्धे करावें* — अमृत को पका-पका कर काहे आधा करते हो ? वह तो अमृत है, उसमें पानी थोडे ही मिला है ? इसलिए जब तक यह द्वैत रहेगा, तब तक तत्त्व का दर्शन ही नहीं होगा।

विश्व और आत्मा का क्या संबंध है, वह समझाने के लिए शंकराचार्य ने दो श्लोक लिखे हैं।

सत्यं जगदिति भानं संसृतये स्यात् अपक्व-चित्तानाम्
तस्मात् असत्यमेतत् निखिलं प्रतिपादयन्ति निगमांतः।

अर्थात् जिनका चित्त अपरिपक्व है उन्हें श्रुति कहती है, यह सारी माया है, भासमात्र है। क्योंकि यह सारा सत्य है, ऐसा हुआ तो आप विषयों को सत्य समझने लगेंगे। और —

परिपक्व-मानसानां पुरुष-वराणां पुरातनैः सुकृतैः
ब्रह्मैव इदं सर्वं जगदिति भूयः प्रबोधयति एषः।

अर्थात् जिनका चित्त परिपक्व है, उनसे श्रुति कहती है कि यह सर्व ब्रह्म है। दुबारा प्रबोध देती है। प्रथम प्रबोध दिया, 'यह मिथ्या है'; फिर कहा, 'यह ब्रह्म है।'

सारांश, सर्वत्र हरि है, इस चीज का अभ्यास करें। हमें बाहर भी डर नहीं और अंदर भी नहीं, डर है अपने चित्त में। इसलिए प्रथम चित्त को हटायें। अंदर का हट नहीं सकता, न बाहर का हट सकता है। हटाने की चीज तो चित्त है। बाहर ब्रह्म है, अंदर ब्रह्म है, बीच में भ्रम है — चित्त है। चित्त से मुक्त हो गये तो काम खतम !

प्रश्न : चित्त अतीत के भार से बोझिल रहते हुए विश्वशांति आदि का विचार कल्पनामात्र रह जाता है। अतीत के भार से मुक्त होने के लिए क्या उपाय किया जाये ?

उत्तर : मैं मानता हूं कि हमारे चित्त पर अतीत का भार न हो, पर उसे काटने की आवश्यकता नहीं। अतीत के हम पर अनंत उपकार हैं। हमारी भाषा अतीत ने ही बनायी है। चिंतन करने बैठते समय ख्याल करें कि हमारे चिंतन में कितने नये शब्द आते हैं, तो गत सौ सालों में बने कोई पांच-पचीस नये शब्द मिलेंगे। किंतु नये होकर भी वे नये शब्द नहीं। मिसाल के तौरपर 'सत्याग्रह' शब्द ही लीजिए। 'सत्याग्रह' शब्द पुराना ही कहा जायेगा। इसी तरह 'सर्वोदय' शब्द पुराना है और 'साम्ययोग' शब्द भी। नये शब्द गढने पडे, ऐसी बात नहीं। दो शब्द मिलकर समस्त पद बनता है। समास भले ही नया बनाया गया हो, पर शब्द पुराने ही होंगे। विज्ञान की बात अलग है। वहां तो नये शब्द गढने पडते हैं, क्योंकि वहां पदार्थ नये ही होते हैं। किंतु मानसिक सृष्टि में हमारे पास चिंतन के लिए पर्याप्त शब्द हैं, जो अतीत ने ही हमें दिये हैं। इसलिए अतीत के भार से मुक्त होने का अर्थ इतना ही करना होगा कि आगे हमें मुक्त मन से नयी-नयी कल्पनाएं, नये-नये प्रयोग करने हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मूल धन हमारे पास है। इसलिए पुराने ग्रंथ-संभार में पडने की आवश्यकता नहीं है। हम, आप मूर्तिमंत वेद हैं ! हमें जन्म देकर वह सफल हो गया, जैसे कि फल-निर्मिति से बीज सफल होता है। इसलिए अब हमें वेदों को देखते रहने की आवश्यकता नहीं। हमारी बुद्धि सहजता से जो प्रेरणा दे, उसे ही शुभ मानकर चलें। पुरानी शुभाशुभ कल्पना के बंधन में फंसेंगे तो वह बोझ होगा। हमारे पास शब्द है तो पुरानी कल्पनाओं की जरूरत नहीं। शब्द न होते तो दिक्कत आती, प्रगति में बाधा पडती। शब्द होने के कारण ही प्रगति में बाधा नहीं। किंतु जब हम शब्दों का प्रयोग ग्रंथों के आधार पर करते हैं, तो उनका अर्थ सीमित हो जाता है। ऐसा कभी न करें। ये शब्द हमारी मिलकियत हैं। इन्हें हम अर्थ देते हैं। ये शब्द हमारी स्वतंत्रता को काटते नहीं, मदद ही करते हैं। यदि कोई व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक पुराने शब्दों का प्रयोग न करने का निश्चय करता है तो वह वहीं समाप्त हो जायेगा। इसलिए क्या करना है, इसका भान हमें होना चाहिए।

हम कौरव-पांडवों की कथाएं पढते हैं। द्रौपदी पांच पांडवों की पत्नी थी; साथ ही वह महान सती थी, ऐसा भी पढते हैं। द्रौपदी के लिए पूरा आदर होते हुए भी आज हमें वैसी प्रेरणा नहीं होती। इसका अर्थ यह हुआ कि पुरानी कल्पनाओं का बहुत-सा बोझ हमने पटक दिया है। पुराना जा रहा है और नया आ रहा है, ऐसी प्रक्रिया नित्य चलती ही रहेगी।

मुख्य देखने की बात तो यह है कि हमारा मन मुक्त है या नहीं। सांप्रदायिक मन बद्ध होता है और असांप्रदायिक मन स्वैर। स्वैर और बद्ध, इन दोनों से भिन्न तीसरा भी एक 'मुक्त मन' होता है। मुक्त मन को स्वैर मन समझने की भूल न करें। जिस तरह पुराने नीति-नियमों से मन जकड जाता है, उसी तरह स्वैर वर्तन से भी। स्वैर वर्तन में स्वतंत्रता का भास होता है। पर वास्तव में वह होता नहीं। प्रायः लोग कहते हैं कि हम अपने मन के मुताबिक चलते हैं। इसका अर्थ यही हुआ कि हम अपने नौकर की आज्ञा के अनुसार चलते हैं। इसमें कौन-सी स्वतंत्रता रही ? मन तो हमारा नौकर है। तो मुक्त मन यानी मन से मुक्ति।

मुक्त मन को मैं खाली आकाश की उपमा देता हूं। बाहर से व्यापक और अंदर से शून्य। उसमें लिप्तता है ही नहीं। बारिश आती है, पर आकाश उसमें लिप्त नहीं होता। बादल आयें-जायें, धूल आये-जाये, हवा आये-जाये, सबके लिए वहां अवकाश है। सतत आना-जाना जारी है। फिर भी आकाश को उसका स्पर्श नहीं होता। मन की ऐसी स्थिति ही मुक्त मन की स्थिति है।

इसके लिए क्या करना होगा ? मनुष्य अपना अहं भूल जाये और घर में बरतता है, वैसा ही बरते। घर में आसक्ति होती है और सहज प्रेम भी। उसमें से आसक्ति छोड दे और प्रेम रहने दे । तो कुल दुनिया हमारा घर बन जायेगा। कुल दुनिया को घर बनाने की प्रक्रिया बढाते चले जायें।

प्रश्न : विश्व-राज्य में एक विश्वभाषा अनिवार्य होगी। और सर्वधर्म के रहते हुए भी एक विश्वधर्म की भी आवश्यकता होगी। तो वह भाषा और वह धर्म कौन-सा होगा ?

उत्तर : विश्व-राज्य के लिए विश्वभाषा और विश्वधर्म की जरूरत नहीं। विश्व-राज्य में किसी जमात का किसी जमात पर आक्रमण नहीं होगा। विज्ञान के जमाने में अपने स्थान पर काम करते हुए सारे विश्व के साथ परस्पर संबंध हो जायेगा। प्रेम की भाषा सब समझते हैं। उस भाषा से काम चल जायेगा। फिर प्रत्यक्ष में जहां जिस भाषा की जरूरत होगी, वहां लोग उतनी सीख लेंगे। विश्वधर्म तो वेदांत है। वेदांत में सब छोटे-छोटे पंथों का अंत हो जाता है। 'वेदांत' शब्द का कोई आग्रह नहीं। महत्त्व वस्तु का है।

*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शांतिसेना का अक्षय बीज : [1]

विनोबा

महात्मा गांधी सूर्य की तरह असंख्य किरणोंवाले थे। उनके चिंतन के परिणामस्वरूप देश के सामने अनेक काम प्रस्तुत हुए। उनकी प्रतिभा इतनी असाधारण थी कि उन्हें कवि की ही उपमा देनी पडेगी। उनकी प्रतिभा कवि की तरह 'नवनवोन्मेषशालिनी' – नयी-नयी स्फुरणाओंवाली थी। बिल्कुल वृद्धावस्था में भी उनके प्रतिभाशाली मस्तिष्क में एक-से-एक बढकर कल्पनाएं सूझती ही रहीं। उनकी कल्पनाओं में से एक कल्पना थी शांतिसेना की।

महान कल्पना अक्षय बीज जैसी होती है। उसमें से अंकुर फूटने में समय लगता है। जिनमें अंकुर जल्दी फूटता है, वे पौधे मर भी जल्दी जाते हैं। दीर्घजीवी वृक्षों के अंकुर फूटने में समय लगता है और वे बढते भी धीरे-धीरे हैं। इसी प्रकार जो विचार अधिक शक्तिशाली और अधिक चिरंजीवी होता है, उसे जन-मानस में उगने में समय लगता है। वे बोने के साथ उगते नहीं दीखते। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनका लोप हो जाता है। वे तो भूमि में सुप्त रहते हैं। भूमि के अंदर परमेश्वर उनका विकास करता है।

विचाररूपी भव्य मंदिर के गर्भगृह में आत्मदेवता का वास है। इस देवता के आसपास गंभीर विचार बिखरे पडे होते हैं। जीवन की अन्य छोटी-छोटी बातें और छोटे-छोटे विचार तो मंदिर के आंगन में ही पडे रहते हैं। मंदिर के गर्भगृह में उनका प्रवेश नहीं हो सकता। पता नहीं क्यों, गंभीर और अक्षय विचार किसी गुफा में ही छिपा रहता है। तुरंत दीखता नहीं, लेकिन बाद में प्रकट होता है। ऐसा ही गांधीजी का बोया हुआ एक अक्षय बीज है शांतिसेना का विचार।

गांधीजी कोई बडे विद्वान नहीं थे। वे शास्त्र नहीं जानते थे। लेकिन उनके शब्द भारतीय शास्त्रों में से निकलते थे। बहुत बार संतों की वाणी में भी वेद से संबद्ध शब्द प्रकट हो जाते हैं। ऐसा ही यह 'शांतिसेना' शब्द है। जो पांच-दस विशेष शब्द बापू ने हमें दिये, उनमें से यह एक है। यह शब्द ठीक-ठीक ध्यान में रखने जैसा है। आज शांति की बात तो सब कोई करते हैं, लेकिन शांति 'बेचारी' बन गयी है। उसमें सेना की शक्ति नहीं। गांधीजी की शांति और अहिंसा ऐसी 'बेचारी' नहीं थी। इसी लिए उन्होंने 'शांति' के साथ 'सेना' शब्द जोड दिया।

'सेना' शब्द वेद में आता है – **असेन्या वः पणयो वचांसि** – हे कृपणो, तुम्हारा बोलना असैन्य है, सेना-रहित है। यानी तुम्हारी वाणी में ताकत नहीं, बोलने में संगति नहीं है। 'सेना' शब्द का अर्थ है, मर-मिटने की तैयारी से इकट्ठे हुए लोग, जिनमें संगति होती है।

हिंसा की शक्ति किसमें है? मान लें कि अमुक जगह खतरा खडा हो गया है। हिंसा के पास ऐसा तंत्र तैयार खडा है, जिससे दो, चार या दस हजार का दल वह एकदम उपस्थित कर सकती है। यह दल एक ही मनुष्य की आज्ञा के अधीन आगा-पीछा देखे बिना काम करता है। 'सेना' की ताकत इसमें है।

पूछेंगे कि क्या अहिंसा में ऐसी ताकत आ सकती है ? शांतिसेना का ऐसा संघटन खडा हो सकता है? यह भी सवाल उठता है कि क्या किसी की आज्ञा से बलिदान देने की तत्परता आ सकती है और इस प्रकार के बलिदान में क्या बलिदान देनेवाले का हृदय प्रेम से भरा होगा? क्या ऐसा काम आज्ञा से हो भी सकता है? मेरा जवाब यह है कि स्वतंत्र चिंतन से यह होना जितना संभव है, उससे लेशमात्र कम आज्ञा से होने में नहीं। रामजी जो काम ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं, वह और उतना ही प्राणवान काम हनुमान श्रद्धापूर्वक कर सकते हैं। बापू ने जब 'शांति' के साथ 'सेना'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शब्द जोड दिया, तो उसमें संघटन, अनुशासन और सेनापति के आदेशानुसार काम करने की बात आती ही है।

इस बारे में गांधीजी के साथ मेरी एक बार बातचीत हुई थी। सन् 1942 के आंदोलन के पहले की बात है। गांधीजी का विचार था कि इस बार जेल में जाऊंगा, तो अंदर पैर रखते ही उपवास शुरू कर दूंगा। जेल में पडे रहने की बात अब पुरानी हो गयी। हम अंग्रेजों का राज्य मान्य नहीं करते और उनको यहां से चले जाने को ही कहते हैं, तो अब जेल में जाने के साथ ही उपवास करना है। ऐसा मंथन उनके मन में चल रहा था।

यह कौन कर सकता है? बलिदान तो वही कर सकता है, जिसके दिल में प्रेम भरा हो। कोई एक व्यक्ति कर भी सकता है, लेकिन क्या उसका आंदोलन भी चल सकता है? क्या प्रेमपूर्वक उपवास करके मृत्यु को गले लगाने का जन-आंदोलन हो सकता है? सेना में लाखों लोगों की भरती हो सकती है, तो क्या इसमें भी ऐसा हो सकता है? गांधीजी को लगा कि ऐसा हो सकता है और इसका आरंभ स्वयं से ही होगा। उपवास का आरंभ बापू ही करेंगे, यह बात मालूम होते ही सब घबरा गये। सब सोच रहे थे कि किसी-न-किसी उपाय से इसे रोका जाये, कम-से कम बापू तो उपवास न करें। उपवास की शृंखला आगे नहीं चल सकती, अथवा उपवास के लिए सेना नहीं बन सकती, आदेश से ऐसे काम नहीं होते – इस प्रकार के विचार बापू के आसपासवालों के थे।

ऐसी स्थिति में बापू ने मुझे बुलाया और अपनी बात मेरे सामने रखी। सवाल यह था कि "जो काम ज्ञानी ज्ञानपूर्वक कर सकता है, क्या वही काम अनुयायी श्रद्धा से कर सकता है?" मैंने जवाब दिया, "जी हां, कर सकता है।" तब मैंने यह दृष्टांत दिया था कि जो काम रामजी ज्ञानपूर्वक कर सकते हैं, वही काम हनुमानजी श्रद्धापूर्वक कर सकते हैं। बापू के साथ तो मेरी इतनी ही बात हुई। मैं कोई वचन से बंधा नहीं था कि बापू ऐसा करेंगे तो मुझे भी करना चाहिए।

फिर 9 अगस्त का दिन आ पहुंचा। बापू गिरफ्तार हो गये। लेकिन तब उनके मन में आया कि अभी उपवास न किया जाये; समय पकेगा तब करेंगे। शुरू में सरकार के साथ कुछ पत्र-व्यवहार चलेगा, जबकि मेरे साथ उनकी, जैसा कि ऊपर उल्लेख आया है, बात हो गयी थी कि इस बार तो जेल में जाते ही उपवास पर उतरना है।

उस समय प्यारेलालजी बाहर थे। बापू ने उनसे कहा कि विनोबा के पास खबर पहुंचाओ कि जेल में प्रवेश करते ही उपवास शुरू नहीं करना है। उन्होंने मान ही लिया था कि यह मनुष्य मेरे साथ इतनी चर्चा करके गया है, इसलिए वह तो जेल में जाते ही उपवास शुरू कर देगा। उन्होंने कोई आज्ञा तो नहीं दी थी, लेकिन उन्होंने मेरी सलाह पूछी थी कि क्या ऐसा हो सकता है? और मैंने कहा कि "हां, हो सकता है।" इसलिए आज्ञा से अधिक कीमती चीज मिल चुकी थी। यह चीज किसी 'कमांड', आदेश से नहीं मिली थी।

उन्हीं दिनों मैं भी जेल में गया। जेल में जाते ही मैंने जेलर से कहा – "आप तो मुझे जानते ही हैं। जेल के तमाम नियमों का मैं बारीकी से पालन करनेवाला और दूसरों से करानेवाला भी हूं। लेकिन इस बार ऐसा नहीं होगा। सबेरे तो मैं खाकर आया हूं, इसलिए दोपहर के भोजन का सवाल नहीं। लेकिन शाम से मैं भोजन नहीं करूंगा। कब तक नहीं करूंगा, यह नहीं जानता। यह आपका अनुशासन तोडने के खातिर नहीं, लेकिन मेरा अपना एक अनुशासन है उसका पालन करने के लिए करना है।" इतना कहकर मैं भीतर चला गया।

बाद में वालुंजकर आये और उन्होंने बापू का संदेश सुनाया। इस तरह मेरा यह उपवास नहीं हुआ। बाद में जब बापू ने उपवास शुरू किये, तब मैंने भी शुरू कर दिये। लेकिन यहां मैं अपने हृदय की अनुभूति व्यक्त करना चाहता हूं कि जितने आनंद से बापू उपवास करते, उससे लेशमात्र कम आनंद मेरे उपवास में नहीं होता, यह मेरा दावा है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ज्ञान तो मुझे नहीं था, वह तो गांधीजी के पास था, लेकिन मैंने श्रद्धा से माना था। मैंने इसे आदेश माना। इस घटना से मैं कहना यह चाहता हूं कि श्रद्धा से आज्ञा समझकर अत्यंत आदरपूर्वक और प्रेमपूर्वक अपना बलिदान दिया जा सकता है, इसमें मुझे कोई शंका नहीं। आज्ञा से यह काम हो सकता है, इसमें तो शंका है ही नहीं। अहिंसा को ऐसी शक्ति दिखानी होगी। तभी सेना खडी हो सकेगी। शांतिसेना की कल्पना देकर गांधीजी ने अहिंसा की सेना खडी करने की बात कही है। उन्हें तो अहिंसा की पूर्ण शक्ति प्रकट करनी थी।

गांधीजी ने अहिंसा को खाने-पीने या चौके तक ही सीमित नहीं रखा। मरहम-पट्टी करने या बीमार की सेवा करने या थोडी-बहुत मदद पहुंचाने तक मर्यादित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने अहिंसा में वीरता दाखिल की। इसलिए उनकी अहिंसा में इतनी ताकत पैदा हुई कि सामने हमला होने पर भी हम वहां दौड जायें और सो भी हाथ में कोई हथियार लिये बिना। हम प्रेम और निर्भयतापूर्वक काम करेंगे और मरने का मौका आया तो मर भी जायेंगे। गांधीजी ने हमें ऐसे सबक सिखाये हैं।

वास्तव में गांधीजी के खादी-ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा आदि रचनात्मक कामों के पीछे एक विचार है। खादी कपडा नहीं, एक विचार है। उसके पीछे अहिंसा का विचार है। इसलिए जिन्होंने गांधी-विचार का नमक खाया है वे शांति का काम उठाये बिना कैसे रह सकते हैं ? जो शांति-स्थापना की जिम्मेवारी नहीं उठाते, उन्होंने गांधी-विचार का नमक नहीं खाया ऐसा मानना होगा।

गांधीजी हमेशा कहते थे कि अहिंसा तो वीरों की होनी चाहिए। अतएव हम जो उनके अनुयायी कहलाते हैं, उन्हें वीरों की अहिंसा व्यवहार में आचरण द्वारा प्रकट करनी होगी। और इसी लिए शांतिसेना की योजना है।

गांधीजी ने सेना-मुक्ति की बात कही थी। उनके नेतृत्व में हम स्वराज्य की मांग करते थे। उसमें एक बात यह थी कि हम सेना का खर्च आधा कर देंगे। देश को गुलाम रखने के लिए अंग्रेजों को बडी सेना रखनी पडती है। लेकिन देश आजाद होगा तो हम सेना कम रखेंगे। अंग्रेजों के रक्षाबजट के नीचे देश पिस रहा है, इससे हम देश को बचायेंगे। कांग्रेस ऐसी भाषा बोलती थी। पर आज वह कौन-सी भाषा बोलती है? स्वराज्य में सेना का बजट कितना है? आधा हुआ या बढ गया?

मेरा इतना ही कहना है कि आज-के-आज सेना का विघटन न हो पाता हो, तो आज वह भले ही रहे, लेकिन कल तो वह समाप्त होनी चाहिए न ? लेकिन जब तक आप शस्त्र का आधार छोड नहीं देंगे, तब तक यह कभी नहीं हो सकता। इसलिए हमें देश के अंतर्गत अहिंसा की शक्ति खडी करनी चाहिए। कम-से-कम यह बात भारत में सिद्ध हो जाये कि देश की आंतरिक शांति के लिए पुलिस या लश्कर का उपयोग नहीं करना पडता, तो फिर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अहिंसा किस तरह प्रवेश करे, इसका दर्शन हो सकेगा।

शांतिसेना की कल्पना में गांधीजी की अधूरी रही हुई इच्छा है। जब उन्होंने यह कल्पना प्रस्तुत की, तब हमारे जैसे उनके कमजोर साथियों को तो यह असंभव ही लगी। लेकिन गांधीजी का तो कोई विचार ऐसा नहीं होता था, जो अमल में न आ सके। उनमें एक खूबी थी। वे कहा करते कि मेरी बात पर अमल करनेवाला कम-से-कम एक आदमी तो निकलेगा ही और वह 'एक' स्वयं गांधीजी ही थे! इसलिए गांधीजी ने शांतिसेना के सेनापति के नाते हुक्म दिया और फिर स्वयं ही शांतिसेना के सैनिक के नाते हुक्म का पालन करते हुए निकल पडे ! यह सब हमने अपनी आंखों से देखा है। इसलिए हम यह तो नहीं कह सकते कि शांतिसेना के इस सेनापति की आज्ञा को सिरमाथे लेनेवाला एक भी सैनिक नहीं निकला। एक सैनिक तो निकला ही, जिसने सेवा करके अपना पथ तय कर लिया और उसका बलिदान भारतमाता के चरणों पर अर्पित हुआ। उसका बोया अक्षय बीज अवश्य पनपेगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

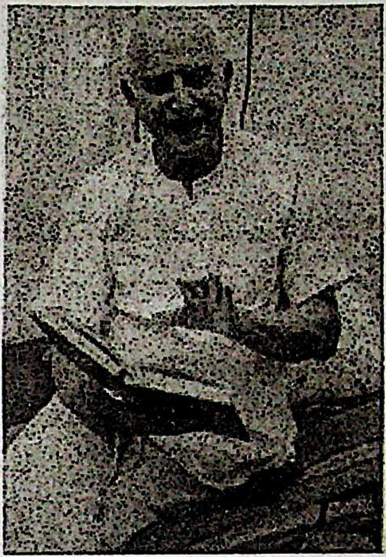

वैष्णवजन तो तेने रे कहिए...

शीला

....डॉ. द्वारकादास जोशी गुज़रात के ज्येष्ठ संनिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता। गुजरात के सारे सर्वोदय-परिवार के वत्सल, हितचिंतक मोटाभाई ! जीवन सारा हाथ में काम, हृदय में राम रखते हुए बिताया। 94 वर्ष की उम्र। पिछले महीने 12 अगस्त को गिर जाने से हड्डी टूटी, ऑपरेशन हुआ। उन्होंने उसे ईश्वर का संकेत समझा। अपने बेटे डॉ. मिहिर को पास बुलाया और कहा, "अगर तुम्हारा सहयोग है तो मैं अब अन्न-जल छोडकर प्रभु के पास जाना चाहता हूं।... और इस तरह एक महायज्ञ शुरू हुआ। स्वजन चम्मचभर गंगाजल पिलाते रहे। करीब 19 दिन के बाद 4 सितंबर को सुबह 7.30 बजे लोकगगन को आलोकित करनेवाले इस तेजस्वी सितारे का अस्त हुआ। तेज उस परम तेज में, प्राण महाप्राण में विलीन हो गया !

रामजी की सेना बंदरों की। सारे भक्तिभाव से भरे। उनमें भी जांमवंत-हनुमंत जैसे तो भक्तों में मुकुटमणि ! उनके जीवन का ध्रुवपद ही यही – **राम काजु कीन्हें बिना मोहि कहां बिश्राम**। जागृति में, स्वप्न में, आशा में, निराशा में सदासर्वदा चित्त प्रभु-चरणों में लीन और देह-मन-इंद्रियां रामजी की सेवा में तन्मय। रामकाज के सिवा उनको कुछ सूझता ही नहीं था। डॉ. जोशी की ऐसी हनुमान-वृत्ति थी। ग्राम-स्वराज्य का रटन उनके लिए रामनाम का पर्याय बन गया था।

अगरचे चरित्र से चारित्र्य की महिमा विशेष है, फिर भी चरित्र सगुण साकार है, चारित्र्य के प्रकाश से प्रकाशित है; इस वास्ते वह हृदय को सहज ही खींचता है। डॉ. जोशी के जीवन में चारित्र्य की उज्ज्वलता सर्वत्र फैली दीखती है।

जन्म उनका साधारण परिवार में 1917 में वसंतपंचमी को हुआ। छोटा-सा गांव। शैशव वहीं बीता। फिर शालेय शिक्षा के लिए आये दादीमां के पास। वह उत्तर गुजरात के महेसाणा जिले में, वडनगर में रहती थी। भजनीक और सेवाभावी। स्वमानी एवं

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वाश्रयी। दादीमां के इन गुणों का द्वारका के बालमन पर गहरा प्रभाव पडा। वडनगर में सयाजीराव गायकवाड की बडी समृद्ध लायब्रेरी थी। किशोर द्वारकादास ने उसके अधिकतर पुस्तक पढ डाले !

फिर डॉक्टरी पढने मुंबई गये और वहीं प्रेक्टीस भी शुरू की। एक सफल लोकप्रिय डॉक्टर के रूप में उन्होंने बडा नाम और दाम दोनों कमाये। इसके साथ उनमें एक जन्मजात व्यापक सामाजिक चेतना और वैज्ञानिक अभिगम था। उस समय उन्होंने एक योजना बनायी, जिसके तहत प्रत्येक परिवार से रु. 250 लेकर सालभर पूरे परिवार की चिकित्सा करना। ऐसे 150 कुटुंब उस योजना में शामिल हुए। उनके प्रेमल, सेवाभावी स्वभाव की वजह से उस समय बडा अच्छा लोकसंग्रह हुआ। साथ ही मजदूर-संस्था में ओनररी मेडिकल ऑफिसर के रूप में वे मानद सेवा देते। समाजसेवा की तत्कालीन प्रवृत्तियों में भी वे भाग लेते। सफाई-कामदारों की हडताल के समय डॉक्टर हाफ पेंट पहने झाडू-टोकनी लेकर मोहल्ले की सफाई भी करने जाते। उनसे प्रेरणा पाकर कितने किशोर-युवा साथ में आ जाते। उनमें से कुछ तो बाद में सेवाक्षेत्र में भी आये।

ऐसे ही दस साल बीत गये। फिर गंभीर बीमारी आती है। जीवन-मरण का संकट सामने खडा हुआ। चिंतन चला – 'किसलिए है यह जीवन? क्या खुद के लिए जीने में असली समाधान अनुभव में आता है ? ईश्वर क्या चाहता है ?' – तीव्र मंथन के बाद संकल्प हुआ कि गांवों की सेवा करना है। धर्मपत्नी रतनबहन से सलाह की। उन्होंने राजीखुशी से संमति दी। वर्तमान सुख-वैभव को छोडकर गांव में रहने की अपनी तैयारी बतायी।

वडनगर में मलेरिया का बार-बार उपद्रव होता था। मुंबई में रहनेवाले वडनगर के लोगों ने 'वडनगर नागरिक मंडल' की स्थापना की और वडनगर में एक दवाखाना शुरू किया। डॉक्टर अपने सहकार्यकरों के साथ तत्काल वहां दौड गये। गांव-गांव, घर-घर घूमकर मरीजों का उपचार किया। उनके जीवन में यह एक महत्त्व की घटना थी। लोगों के बीच घूमते हुए उनके ध्यान में आया कि लोगों में आंखों के रोग का प्रमाण बहुत अधिक है। और उसमें भी मोतियाबिंदु के मरीज तो चिकित्सा के अभाव में बहुत ही उपेक्षित हैं। उन्होंने तय किया कि गांव में बैठने के पहले एक साल आंखों के उपचार की तालीम ली जाये।

और इस तरह 1949 के जून माह में डॉक्टर ने मुंबई छोडकर वडनगर से चार कि. मी. दूर नवापुरा गांव में आकर धूनी जगायी। इस नवप्रयाण के लिए सेवाधर्म की दीक्षा भी ईश्वरकृपा से उनको उसी समय मिली। सन् 49 का एप्रिल माह। सूरत के वेडछी विद्यालय में अखिल भारत चरखा संघ ने एक शिविर का आयोजन किया, जिसमें खास विनोबा आये हुए थे। रविशंकर महाराज, बबलभाई मेहता, जुगतराम दवे जैसे वरिष्ठ सेवक भी थे। वहां उनके हृदय पर विनोबा के विचार और व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पडा। उनको लगा कि यह आदमी सबसे निराला और अनोखा है। वह समाज की सिर्फ सेवा ही नहीं, आमूल परिवर्तन, क्रांति करना चाहता है। उन्होंने अपने हृदय में विनोबा को बिठा लिया और स्वयं उनके आजीवन पाइक बन गये। उनकी क्रांति-सेना के एक सन्निष्ठ सैनिक। तबसे भक्ति-निष्ठा का जो अग्नि उन्होंने अपने हृदय में जलाया, उसे आमरण प्रज्वलित रखा। अपनी इच्छा, वासना, अपनी अहंता-ममता समस्त का होम उस अग्निकुंड में वे करते चले गये। आखिर अपनी देह भी उसी होमाग्नि को अर्पण करके वे कृतार्थ हो गये।

प्रारंभ में महीने में 10 दिन भूदान के काम में देना उन्होंने शुरू किया। फिर आया सत आवन ! विनोबाजी के गुजरात-प्रवेश की तैयारी के रूप में आह्वान हुआ कि सब कम-से-कम एक साल भूदान-कार्य में दें। आंदोलन में तूफान आया और डॉक्टर पूरी तरह से उसमें कूद पडे। गांव-गांव में पदयात्रा करते हुए क्रांति का संदेश फैलाया। गांव में जाकर प्रथम गांवफेरी, स्वागत-सभा; फिर डॉक्टर का दवाखाना किसी के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बरामदे में, या पेड के नीचे या मंदिर के ओटे पर शुरू हो जाता। उपचार करते-करते लोगों से बातें होतीं और इस तरह लोकहृदय में प्रवेश होता। दोपहर को तीन बजे बहनों की, या आगेवानों की सभा होती, बाद में हरिजनवास में, मजदूर-ठाकरडा-चमार आदि के मोहल्ले में जाते। साथ में गांव की प्रमुख-मंडली रहती। गरीब जनता के सुख-दुःख पूछते, उनके प्रश्नों की चर्चा करते, और करने जैसे कामों का सूचन करते। फिर रात को ग्राम-सभा होती। भजन, भूदान-क्रांति के गीतों से वातावरण में उत्साह भर जाता। भूदान-ग्रामदान की बातें होतीं। इस तरह सतत पदयात्रा होती गयी। महेसाणा जिले का तो एक भी गांव नहीं छूटा। कुल 11 हजार बीघा जमीन प्राप्त हुई। गरीब, दलित, वंचितों में ये जमीन बांटी गयी, साथ में बैल, गाडी, कुंआ, हल आदि साधन-दान भी दिलाया गया।

एक ओर सभा-शिविर, सम्मेलन, पदयात्राएं आदि कार्यक्रमों का जमघट बना रहता, दूसरी ओर श्रद्धेय रविशंकर महाराज की प्रेरणा से मोतियाबिंदु ऑपरेशन करने का नेत्रयज्ञ शुरू किया। गुजरात में और देश में नेत्रयज्ञ की परंपरा चली, जो आज भी वैसी ही जीवंत है।

डॉक्टर जोशी के जीवन में जीवनसाथी रतनबहन का अनोखा स्थान था। एक प्रसंग स्मरणीय है। जब नवापुर में रहते थे, तब एक दफा गुजरात विद्यापीठ के विद्यार्थी अमदावाद से आये हुए थे। शाम की प्रार्थना के बाद सहज बैठे थे। डॉक्टर ने पूछा, स्नातक तो हो गये, अब क्या करोगे?'

किसी ने कहा, शिक्षक बनेंगे तो किसी ने नौकरी करेंगे कहा। एक विद्यार्थी ने कहा – "जोशी साहेब, पहले आपकी तरह पैसे इकट्ठे कर लूंगा, उसके बाद आपके जैसे ही गांव की सेवा में लग जाऊंगा।"

बात साधारण थी। लेकिन हृदय को एकदम लग गयी। चित्त में आघात हुआ। रात को देर तक नींद नहीं आयी। मंथन चला। सर्वस्व अर्पण करने की बात मन में आती रही। 'लेकिन रतन पर दबाव कैसे ला सकता हूं ! वह अहिंसा नहीं है।' मन ही मन में व्यथित होते रहे। सहधर्मिणी की नजरों से यह बैचैनी कैसे छूट सकती थी? पूछा, क्या हुआ है? यह उदासी क्यों? आखिर डॉक्टर ने हृदय की बात बतायी। कहा, पहले भी तुमने अपने पास का सोना भूदान में दे दिया है। लेकिन रतन, कल तुमने भी उस विद्यार्थी का जवाब सुना। इस तरह हमारा गलत उदाहरण लोग ले रहे हैं। हमारे पास थोडी-बहुत जो बचत है, हम उसे भी समाज को दे दें और पूरी तरह से लोकाधारित होकर रहें तो कैसा, ऐसी बात कल से मेरे मन में आ रही हैं।"

"ठीक है, आप जैसा चाहते हैं, वैसा ही करेंगे।" – गृहिणी का उत्तर था। "लेकिन मिहिर को पढाने के लिए थोडी रकम त्राजू में रख लेंगे। भविष्य में उसकी आवश्यकता होगी।"

"परंतु ऐसा करने से गलत उदाहरण नहीं बैठेगा? दूसरों को भी इस तरह धन-संग्रह करने का पाठ मिलेगा। उपरांत, एकमात्र भगवान पर श्रद्धा रखने हम जा रहे हैं; वह श्रद्धा भी खंडित होती है। भगवान मालिक है, वही हमारा ध्यान रखेगा, ऐसी श्रद्धा उसके सेवक में होनी चाहिए।" और सहधर्मचारिणी ने पति का अनुसरण करते हुए श्रद्धापूर्वक अपना सर्वस्व दे डाला ! सुबह उठकर दोनों अपनी संपत्ति के वितरण में लग गये।

विनोबाजी कहते कि "जो केवल सामाजिक क्रांति की प्रेरणा से उत्साहपूर्वक आंदोलन में आये हैं, वे उसके मंदकाल में जबकि आंदोलन का प्रवाह क्षीण होता है, लोगों का जोश-उत्साह समुद्र में ज्वार के बाद भाटा के समान मंद होता जाता है, तब निराश हो जाते हैं, कुछ तो प्रतिक्रियावादी भी हो जाते हैं। ऐसे समय वही टिक सकता है जिसकी मूल बुनियाद अध्यात्म की है।" चित्तशुद्धि की तडपन, ईश्वर के लिए भक्तिभाव और स्वाध्याययुक्त सत्संग की भूख, इस त्रिवेणी-संगम पर अध्यात्म का प्रयाग प्रतिष्ठित है। डॉक्टर के जीवन में ऐसा त्रिवेणी-संगम हुआ था। इस कारण उनमें निरंतर एक प्रकार की अदम्य आशा-उत्साह और कार्य की स्फूर्ति दिखायी देती थी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और उनकी ऐसी भूमिका के कारण ही संसार में, उसके सुख-दुःख, आशा-निराशा के प्रसंगों में वे जलकमलवत् निरासक्त रह सकते थे। वे सदा कहते कि "यह संसार सारा नाटक है। यह करूं, वह करूं' ऐसी हायतौबा किसलिए? जबकि सबकुछ ईश्वर की इच्छा से चलता है। हमें तो केवल चित्तशुद्धिपूर्वक उसके हाथ का औजार बनना है, बस !"

ऐसा मनुष्य जो अपनी प्रेरणा अपने अंतरात्मा में से पाता है, जो स्वस्थ है, संतुष्ट है, जिसका परार्थ के सिवा कोई चिंतन नहीं, स्वाभाविक ही उसमें दूसरों को प्रेरणा देने की शक्ति तथा प्रेम-वात्सल्य-उष्मा देने का सामर्थ्य विकसित होता है। फूल की सुगंध से भ्रमर जैसे खींचे आते हैं वैसे डॉक्टर के पास भी लोग खींचे आते थे। उनसे प्रेरणा पाकर अनेकों ने अपने जीवन की दिशा बदल डाली है।

सेवाधर्मो परम गहनो कहा है। अतिवृष्टि-अनावृष्टि जैसी कुदरत की आसमानी-सुलतानी के सामने राहत-कार्य के लिए दौडे जाने में या समाज के तत्कालीन प्रश्नों को हल करने में अपना समय और शक्ति देने में क्रांतिकारी मानस को समाधान नहीं। ये कार्य भी मौके पर करना पडे तो वह करेगा, लेकिन अपने तरीके से करेगा। समाज में आमूल मूल्य-परिवर्तन लाने का क्रांति-कार्य यही उसकी समस्त प्रवृत्ति की एकमात्र दिशा होगी। डॉक्टर जोशी ऐसे एकाग्र सेवक थे। उन्हें अंतर में साक्षात् हो गया था कि एकै साधे सब सधे। हमारा मुख्य काम है जनता को जगाना और राज्य का क्षय करते जाना। उसके लिए आत्मनिर्भर गांव खडे करने होंगे। ग्रामस्वराज्य के बिना यह क्रांति असंभव है। इस वास्ते वे कहते रहते कि " 'ग्रामस्वराज्य' शब्द हमारे सामने आया है, लेकिन अभी वह व्यापक नहीं हुआ है। उसका व्यवहारिक स्वरूप अभी हाथ में नहीं आया है। सामाजिक चेतना जगी नहीं है। आज अन्याय के प्रतिकार के लिए छोटे-मोटे सत्याग्रह होते रहते हैं; लेकिन समग्र समाज को ग्रामस्वराज्य की दिशा में ले जाने के लिए बुनियादी कार्यक्रम हाथ में लेना अभी बाकी है।" वह कार्यक्रम क्या हो सकता है, कैसे होगा, इसी का चिंतन अपने निवृत्ति-काल में वे करते रहे। अपने पास आने-जानेवालों से यही चर्चा करते रहते।

इसके बावजूद, लगता है कि उनके भीतर कर्म-संन्यास की प्रक्रिया चल रही थी। अपनी दैनंदिनी में वे दर्ज करते हैं कि, "अंदर वृत्तियां शांत होती जा रही हैं। कर्तव्य कुछ बचा है, ऐसा महसूस नहीं होता। सहज भाव से उपरम का अनुभव आ रहा है। सब कुछ कृष्णार्पण कर देना यही एक भाव रहता है।

पीड परायी जाणे रे... ऐसा यह वैष्णवजन निरासक्त, निरहंकृत होकर सेवा-धर्म की साधना करता गया और जीवन के अस्ताचल में **रामनाम शुं ताळी रे लागी...** के भाव में भावित होकर उसने अपने जीवन को, अपनी देह को भी कृष्णार्पण कर दिया। जो कुछ भी मलिनता-अपूर्णता बाकी रही होगी, अंतिम क्षण में परमात्मा ने निःसंशय उसे दूर करके उन्हें अपनी गोद में ले लिया होगा।

*

जहां भगवान हैं और जहां भक्त है, वहां सबकुछ है। वैसे तो जहां भगवान हैं, वहीं सबकुछ है। ईश्वर का सामर्थ्य अनंत है। उसमें हमारी ओर से कुछ जोड देने से वृद्धि होनेवाली नहीं है। फिर भी जहां दोनों सामर्थ्य एकत्र होते हैं, वहां कुछ विशेष अनुभूति आती है। भगवान को तो हमने आंखों से देखा नहीं है। भक्त को हम देख सकते हैं। इसलिए हमारी निगाह में भक्त की महिमा बढ जाती है। समुद्र का पानी बादल बन कर बरसता है। तो हमारे लिए बादल ही समुद्र से बढकर है। इसलिए तुलसीदासजी ने लिखा है — राम ते अधिक राम कर दासा ।

विनोबा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गीता-प्रवचन के सत्संग में

गुण-विकास-योग

गीता

बाबा ने कहा था, "हम लोग प्राचीन काल से ही अध्ययन-प्रेमी रहे हैं, लेकिन ऐसी प्रार्थना नहीं करते कि बहुत अध्ययन करें। बल्कि यही प्रार्थना करते हैं कि तेजस्वि नावधीतमस्तु, अर्थात् हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। अध्ययन में तेजस्विता तभी आती है, जब उसके साथ जीवन-योग होता है। मैंने उसे 'कर्मयोग' नाम नहीं दिया, बल्कि 'जीवन-योग' कहा है। जब अध्ययन का किसी तरह जीवन के साथ योग होता है, तो उसमें विचारशीलता आती है।... तब जीवन विचारमय और विचार प्राणवान बनता है।

अध्ययन लंबाई-चौड़ाई से नहीं होता, गहराई से होता है। धीरे-धीरे सतत होता रहेगा, और धीरे-धीरे ही वह पचेगा।"

उन दिनों अपने बृहत् परिवार के साथ हम गीता-प्रवचन का पारायण-अध्ययन कर रही थीं। बाबा के उपरोक्त उद्गारों के प्रकाश में पारायण चल रहा था। मैं जब-तब कुछ चिंतन व अनुभव नोट करने लगी थी। उसमें से कुछ बातें सहचिंतन के लिए यहां रखी हैं –

ता. 14.8.06

आज गीता-प्रवचन का 16 वां अध्याय पढा। चिंतन तो अनायास होता रहता है, लेकिन आज उसे शब्दांकित करने का सूझा।

15 वें अध्याय का 'पुरुषोत्तम-योग' परिपूर्णता की समाधि में ले गया था। हमारी मां भजन-मंडली में तन्मयता से गाती थीं, "**चैतन्य-सिंधु घूघवे ॐ ॐ ॐ ...।**" – चैतन्य के महासागर का सर्वत्र ओम्-ओम् निनाद हो रहा है। – चैतन्य के इस 'नादब्रह्म' का, या समरसता का स्वाद लेने के बाद 16 वें अध्याय के 'देवासुर-संग्राम' की बात कुछ अटपटी लगने लगी। लगा, जैसे ऊंचे शिखर पर से नीचे तो नहीं फिसल रहें? अब अद्वैत के बाद द्वैतभाव के इस झगडे से हमें क्या मतलब? हमें तो हम जहां हैं, वहां से अद्वैत की समरसता की ओर बढना है।

कई साल पहले कुछ गुजराती-पंक्तियां रची थीं –

जीवन दे छे, जीवन दे छे
नित-नित नवुं तुं तो जीवन दे छे
विविधरंगी दुनियानी संगमां
अंतरना देवासुर जंगमां
अनुकूल के प्रतिकूल सहु रंगमां
रम्य उजासनुं कमल खीले छे
मुदमय मंगल झरणुं वहे छे

– तू तो नित्य नया जीवन दे रहा है। चाहे रंग-बिरंगी दुनिया का संग हो, चाहे अंतर में देवासुर जंग हो, रंग जो भी हो, अनुकूल हो या प्रतिकूल, भीतर तो सौम्य प्रकाश का कमल खिल रहा है और साथ ही आनंद का मंगल झरना बह रहा है। –

इस पद्य में 'देवासुर जंग'वाली पंक्ति लिख तो दी, परंतु कुछ जंच नहीं रही थी। मैं सोचती रही, 'देवासुर जंग' शब्द यहां ठीक नहीं लगता। अपने भीतर तो कोई जंग या संग्राम चलता हुआ नहीं दीख पडता, जिसमें किसी की हार होती है और किसी की जीत। सर्वोदय की भावना में तो सबका स्वीकार है, सबकी जीत ही जीत है। मनुष्य में देह और आत्मा दोनों हैं। दैवी वृत्ति आत्मभाव सूचित करती है और आसुरी वृत्ति देहभाव से जुडी है। अपने लिए तो दोनों का स्वीकार है, निषेध किसी का भी नहीं। बस, सवाल है आत्मभाव और देहभाव के बीच संवादिता साधने का। इसलिए उस पंक्ति को बदल दिया। लिखा,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

''अंतरना अमृत-मंथनमां'' – अंतर के अमृत-मंथन में। अब अपना समाधान हो गया।

पुरानी कथा है। देव और असुर दोनों को ही अमृत की, शाश्वत जीवन की इच्छा हुई। दोनों ने मिलकर अमृत-मंथन की सामग्री इकट्ठा की और मंथन में दोनों जुट गये। इसमें से जो अनेक उपलब्धियां हुईं, दोनों ने परस्पर बांट लीं। अंत में अमृत भी मिला। पर उसे पचाने की पात्रता दोनों की समान नहीं थी। असुरों को विकास का और अधिक फासला तय करना बाकी था। अतः वह अमृत देवों के हिस्से चला गया। देवों की दैवी-संपत् विकसित जो हुई थी।

उपनिषद में भी इससे मिलती-जुलती कथा है। आत्मा को प्राप्त करने की इच्छा से देवों में से इंद्र और असुरों में से विरोचन प्रजापति के पास पहुंच गये। दोनों को प्रजापति ने बत्तीस साल ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने को कहा। अवधि समाप्त होने पर प्रजापति ने पूछा, ''तुम लोग यहां किस इच्छा से रहे?'' दोनों ने आत्मज्ञान की अपनी इच्छा बतायी। प्रजापति ने प्रथम तो जल से भरे बडे थाल में उन्हें देखने को कहा, और कहा इसमें जो दीखता है, वही आत्मा है। विरोचन तो अपना स्थूल प्रतिबिंब देखकर संतुष्ट हो गया और अपने स्थान पर लौट गया। लेकिन इंद्र को इतने स्थूल से समाधान नहीं हुआ। वह बार-बार प्रश्न लेकर प्रजापति के पास आता रहा और प्रजापति क्रमेण उसको स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम की ओर बढाते गये। और अंत में उसे 'सत्यकाम, सत्यसंकल्प आत्मा' की पहचान करवायी।

यहां पद्य में 'अमृत-मंथन' शब्द में कुछ ऐसा ही भावार्थ है। तो अब समझ में आया कि पुरुषोत्तम-योग का अंतिम सर्वोच्च शिखर का दर्शन तो ले लिया, लेकिन वहां एकदम तो पहुंचना संभव नहीं है। क्रम-क्रम से जाना होगा। क्रमशः दैवी गुणों का, मानवता का विकास करते-करते आगे-आगे बढते चले जाना है। अतः इसे आत्मविकास या गुण-विकास कह सकते हैं। इसलिए 16 वें अध्याय को मैंने नया नाम दे दिया – **''गुण-विकास-योग''** अथवा **''अमृत-मंथन-योग''**।

देहगत अवस्था को आत्मवत् बनाने के लिए बाबा ने एक नया ही विचार दिया है। उसे 'दर्शन' ही कहा जा सकता है, ''गुण आत्मा के होते हैं और दोष देह के।'' ''दोष आभासमात्र हैं, उपाधि के कारण हैं। आत्मा केवल गुणनिधान है।'' इस संबंध में बाबा ने गुण-विकास की एक नयी ही प्रक्रिया खोज निकाली है और उसके लिए नये-नये शब्द भी बनाये हैं। गुण-ग्रहण, गुण-दर्शन, गुण-वर्णन, गुण-निवेदन, गुण-वर्धन वगैरे कई शब्द बाबा ने समझाये भी हैं। इसका अध्ययन एवं अनुशीलन वाकई दिलचस्प है।

गीता के 16 वें अध्याय में 26 गुणों का जिक्र है। गीता-प्रवचन में उन सबका सार-संक्षेप करके सत्य एवं अहिंसा – इन दो प्रधान गुणों में समेट लिया है। इन दो गुणों के संवर्धन-संरक्षण के लिए निर्भयता और नम्रता को आगे-पीछे रख दिया है। इनमें से सत्य निरपेक्ष है और अहिंसा सापेक्ष है। सत्य को खोजना है। अहिंसा का विकास करते-करते अंत में निरपेक्ष सत्यनारायण तक पहुंचना है। अहिंसा यानी गुण-विकास की प्रक्रिया ही कह सकते हैं।

गीता-प्रवचन में विशाल फलक पर गुण-विकास अथवा अहिंसा-विकास के दो चित्र अंकित हैं। पहले में आत्मसंरक्षण के लिए उत्तरोत्तर अहिंसक वृत्ति का विकास बताया है। दूसरे चित्र में मांसाहार-त्याग द्वारा आहार-शुद्धि की बात कही है। इन दोनों संदर्भ में विनोबा-विचार का प्रदान भी देख लेंगे।

प्रथम चित्र में प्राचीन काल से लेकर गांधीयुग तक चार तबकों का विचार किया है। उसका सार-संक्षेप नीचे के अनुसार है –

1. अहिंसक परशुराम ने उन्मत्त क्षत्रियों को वश करने के लिए पृथ्वी को निःक्षत्रिय करने की ठान ली

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और हिंसा का सहारा लिया। उनका हिंसा से हिंसा के प्रतिकार का प्रयोग असफल रहा।

2. विश्वामित्र स्वयं अहिंसक रहे। पर संरक्षण के लिए उन्होंने समाज में मान्य क्षात्रधर्म के द्वारा हिंसा को मान्यता दी। अर्थात् अभी अहिंसा स्वरक्षित नहीं हुई। जैसे आज पुलिस या सैनिक के द्वारा मानव-समाज ने भी कानूनी 'हिंसा' को यानी 'दंडशक्ति' एवं 'सैन्य-शक्ति' को आंशिक मान्यता दी ही है।

3. संतों ने संरक्षण के लिए भी हिंसा का सहारा नहीं लिया। उनकी अहिंसा को किसी भी प्रकार की हिंसा मान्य नहीं थी। अहिंसा स्वरक्षित हो या खुद बलि हो जायें – यह थी उनकी वृत्ति। लेकिन अभी अहिंसा को सामुदायिक स्वरूप आना बाकी था।

4. गांधी-काल में अहिंसा-वृत्ति को सामुदायिक स्वरूप मिला। स्वतंत्रता आंदोलन में अहिंसा को सर्वोपरि अग्रस्थान दिया गया। परंतु अभी स्वतंत्रता प्राप्त करने की – 'प्राप्तव्य' की प्रेरणा प्रबल थी। फिर भी गांधी के अहिंसा-प्रयोग ने समूचे विश्व में एक नयी आशा जगायी – अहिंसा से आगे बढने का मार्ग प्रशस्त किया।

5. विनोबा-काल में अहिंसा ने एक और कदम आगे बढाया। 'प्राप्तव्य' प्रेरणा तो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद समाप्त हो गयी। अब अगर जनता इस प्राप्ति के फलोपभोग में डूब जाये, तब तो फिर हिंसा को सिर उठाने का मौका मिल जाये। अतः एक नयी तपस्या का आरंभ हुआ, 'भूदान-यज्ञ' के रूप में। स्वतंत्रता-'आंदोलन' के बाद भूदान-'आरोहण' की हवा चली। 'प्राप्तव्य' प्रेरणा की जगह 'दातव्य' (दान) और 'कर्तव्य' (करुणा) की प्रेरणा को जगाने का भगीरथ प्रयत्न हुआ। जागतिक शांत क्रांति का एक अनूठा मंगल-दर्शन मिला। 'ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य' तथा 'जय जगत्' में 'विशिष्ट' और 'व्यापक' यानी 'सर्व' एकरूप बने गये। दोनों के एकत्र शिखर-दर्शन में उनकी परिपूर्णता की झांकी मिली। इस बारे में चिंतन करने पर जैसे 'अनंत' क्षितिज विस्तरित होता है। इस युग-प्रवर्तक चैतन्य-बीज को विकसित करने का दायित्व अब आनेवाली पीढी को पराक्रम करने का अवसर देकर संपन्न और समृद्ध करेगा।

16 वें अध्याय के दूसरे चित्र में मांसाहारत्याग की यानी आहार-शुद्धि की बात रखी गयी है। प्राचीन काल में मांसाहार के नियमन के लिए यज्ञ का प्रयोग हुआ। उसमें शिथिलता आयी और बुद्ध ने आहार-शुद्धि के लिए ही यज्ञ का निषेध किया। यों इस चित्र में पोषण की बात है। पहले चित्र में रक्षण की और दूसरे चित्र में पोषण की बात आयी है।

बाबा ने आहार-शुद्धि के आगे जाकर 'जीविका-शुद्धि' की भी बात रखी है। अपने कांचन-मुक्ति एवं ऋषिखेती के प्रयोगों द्वारा इसका सफल प्रयोग भी कर दिखाया है।

अपना आश्रम भी जीविका-शुद्धि की उसी दिशा में प्रयोग कर रहा है। ''मजदूरी के क्षेत्र में ब्रह्मविद्या'' को खडा करने का एक सूत्र, एक मंत्र ही बाबा ने हमारे सामने रख दिया है। अब जीविका-शुद्धि के द्वारा जीवन-योग की परिपूर्णता की ओर हमें बढते जाना है। नया प्रयोग है, नयी दिशा है, इसलिए नयी परिभाषा की भी जरूरत पडेगी। पुराने शब्दों में नया अर्थ भरने की बात हमको बापू-बाबा ने विरासत में दी ही है। तो श्रम करते हुए, खेती करते हुए हमने भी नये शब्द बना लिये हैं। हम श्रमनिष्ठा द्वारा 'श्रमण-संस्कृति' को और उत्पादक श्रम द्वारा 'कृषि-संस्कृति' को विकसित करने की कोशिश कर रहे हैं। इस दिशा में क्या, कितना विकास हुआ यह तो समय ही बतायेगा। लेकिन जीविका-शुद्धि का यह प्रयोग अत्यंत मंगल प्रतीत होता है। आज की आर्थिक समस्या हल करने की उसमें क्षमता है।

इस 16 वें अध्याय में आसुरी संपत् का भी वर्णन है। इसमें तीन वृत्तियां मुख्य हैं, जिसे 'तीन नरक-द्वार' भी कहा है। ये हैं काम-क्रोध-लोभ। इनमें भी आज

[देखें पृष्ठ 359 पर]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

' वे हुक्म देते और मैं करता '

कुसुम

1955 की पहली जनवरी! नया साल और नया प्रदेश। बिहार से विदायी और बंगभूमि में प्रवेश। आम्रवृक्ष के पत्तों से सजाये कलात्मक प्रवेशद्वार, अल्पना से चित्रित भूमि, मंगल कलश और आरती, शंखनाद और मंजु-मधुर गीतों के स्वर – उस पवित्र और भावपूर्ण वातावरण में विनोबा ने बंगाल की जनता के सामने दिल के भाव खोल दिये, "बचपन से मुझे दो चीजों का आकर्षण रहा, बंगाल की क्रांति, और हिमालय की शांति का। ब्रह्मविद्या का नाम लेकर मैंने गृहत्याग किया और काशी पहुंचा। सोच रहा था कि हिमालय जाऊं या बंगाल। वहां देखा, अखबारों में गांधीजी के काशी के भाषणों की रिपोर्ट छपी थी और वातावरण में काफी खलबली मची थी। वह पढकर मुझे लगा कि यह कोई विशेष शख्स है। मैंने उन्हें पत्र लिखा। उसके जबाब में उन्होंने मुझे लिखा, 'इन प्रश्नों के उत्तर पत्र द्वारा नहीं दिये जा सकते हैं। तुम यहां आओ। यहां चर्चा भी होगी और तुम हमारा जीवन भी देखोगे।' फिर काशी से हिमालय न जाते हुए मैं गांधीजी के पास साबरमती आश्रम पहुंचा। वहां उनके चरणों में मुझे बंगाल की क्रांति और हिमालय की शांति का दर्शन हुआ। तब से आज तक शांतिमय क्रांति का संदेश लेकर घूम रहा हूं।"

* * *

तेरह साल की अखंड पदयात्रा में सर्दी, गरमी, ठंढ, बारिश का ख्याल कहां रहा? कितने ही प्रसंग याद आते हैं। घनघोर वर्षा, आंधी, लालटेन बुझ जाती है, कीचड में पांव फंसता है। कितनी बीहड बाट ! लोग लिखते हैं, बोलते हैं, प्रार्थना करते हैं, "बाबा, आखिर क्यों इतना कष्ट, इतनी तकलीफ?" बाबा ने कहा "ये लोग नहीं जानते हैं। इस यात्रा में देह को थोडी तकलीफ हुई होगी। पर बापू सतत मेरे आगे-पीछे रहते हैं, मुझे सम्हालते हैं, इसलिए मुझे न तकलीफ है न चिंता !

* * *

बापू की याद सतत उनके साथ है। बापू की जन्म-तिथि! शहर की सभा में खूब भीड ! तुलसी के वचनों से बाबा ने मधुर स्वर में आरंभ किया –

"मारग में तारण मिले संतराम दोई
संत सदा सीस उपर राम हृदय होई" ।।

"मेरे जीवन में मुझे भी दो तारण मिले हैं। एक है मेरे हृदय में और दूसरे का आशीर्वाद हमेशा मेरे सिर पर रहा है।" जब उत्कट भाव उठते हैं, वाणी कुंठित हो जाती है।

यद्यपि उम्र छोटी थी, 'विनु' की वैराग्य की धुन बडी थी। मां को इसका पूरा ख्याल था। पर वह भी कभी परीक्षा कर लेती थी। विनु करेले की सब्जी नहीं खा सकता था। उसके लिए उसे अरुचि थी। मां कहा करती, "विनु ! तेरा वैराग्य करेले के सामने हार खाता है।" आगे विनु बडा हो गया और गांधीजी के आश्रम में पहुंचा तो पहले ही दिन खाना परोसने के लिए बापू आये और करेले की सब्जी थी। बापू को इंकार कैसे किया जाये? वह सब्जी भाती नहीं थी इसलिए उसे पहले ही खाकर खतम किया। बापू को लगा लडके को यह सब्जी प्रिय दीखती हैं, उन्होंने दुबारा परोसी, फिर तिबारा ! "इस तरह मुझे करेले की सब्जी की आदत हो गयी और बाद में वह प्रिय भी हुई।" ऐसी कहानी कभी-कभी बाबा सुनाते हैं।

दक्षिण भारत की यात्रा में अपनी एक लाडली बेटी को बाबा ने कहा, "तुमने हिंदी सीख ली, वैसी अब मराठी भी सीख लो। मेरी आध्यात्मिक विषयों की किताबें मूल मराठी में हैं। और गुरु के विचार अच्छी तरह से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आत्मसात् करने हों तो उसकी भाषा सीखनी चाहिए।'' यूं कहते-कहते वे थोडी देर रुक गये और फिर बोले, ''मेरी बात बताऊं ? बापू से मेरी पहली बार मुलाकात हुई, तब मेरे ध्यान में आया कि उनको हिंदी ठीक नहीं आती है। फिर मैंने तय किया और अच्छी तरह से गुजराती सीख ली। तीसरी मुलाकात में मैंने उनसे गुजराती में ही बात की। तबसे आजतक जब कभी उनसे मुलाकात हो जाती है, मैं उनके साथ गुजराती में ही बोलता हूं।'' ''गुजराती मेरे लिए 'गुरुमुखी' है, क्योंकि मैंने वह गुरुमुख से सुनी है'' ऐसा भी वे कहते हैं।

यात्रा में कभी कोई गुजराती भाई मिलते हैं, तो बाबा कहते हैं, ''हर गुजराती व्यक्ति के चेहरे में मुझे बापू का दर्शन हो जाता है।'' गुजरात प्रदेश में प्रवेश करते ही उन्होंने कहा, 'महाराष्ट्र मेरी जन्मभूमि है लेकिन यह मेरी द्वि-जन्मभूमि है। यहांपर मैं वास्तव में द्विज बना, मुझे ज्ञान हुआ' और उनकी आंखें भर आतीं। गुजरात की यात्रा तो उनके लिए 'तीर्थयात्रा' ही थी। भूदान की इस यात्रा में बीच-बीच में लक्ष्मीनारायणों के दर्शन भी होते हैं। टाटानगर में गुजराती व्यापारियों की सभा थी। शुभ्र वस्त्रधारी समाज पर बाबा ने एक निगाह डाली और कहने लगे ''आप सबकी संपत्ति तो मेरे बाप की इस्टेट है इसलिए इसे पूरी की पूरी पाने का मैं हकदार हूं। लेकिन इन दिनों तो मैं छठा हिस्सा ही मांगता हूं। इसलिए आपसे भी संपत्तिदान में छठा ही मांग रहा हूं...''

* * *

आखिर देखा जाये तो हमारे बाबा की मूल प्रकृति कैसी है? वे तो जोर-जोर से गाते हैं ''न बंधुर् न मित्रं गुरुर् नैव शिष्यः'' और यह भी कहते हैं कि ''न मेरा कोई गुरु है, न कोई मेरा शिष्य !''

दिन ढलता है और संध्या-समय हो जाता है। उस संधिप्रकाश में बीते हुए दिनों की कभी बातें बाबा सुनाते हैं। ऐसे ही एक संध्या-समय जब हम उनकी खटिया के इर्द-गिर्द बैठी थीं तो बाबा ने बताया – ''बापू थे सेवाग्राम में और मैं रहता था पवनार में। कभी-कभी वे मुझे बुलाते थे तो मैं जाता था, चर्चा करता था और वापस आ जाता था। वैसे हम नजदीक ही रहते थे फिर भी पवनार से सेवाग्राम आने-जाने में कुछ तो समय लगता ही था। पर अब कितना आसान हो गया है। बापू उससे भी अधिक नजदीक आ गये हैं – उनकी मुलाकात के लिए जरा भी देर नहीं लगती है – जरा आंख मूंद ली तो हो गया दर्शन और बात भी शुरू हो गयी !'' – तद् दूरे तद् उ अंतिके – हम रोज सुबह सिर्फ गाते हैं। बाबा को उसकी अनुभूति होती है।

1948 में बापू हम सबकी आंखों से ओझल हो गये। शायद ही कोई आंख होगी जिसने आंसू न बहाये हों। धाम नदी के किनारे बापू के पार्थिव देह की भस्मी प्रवाहित करने का प्रसंग था। वहां लोग दर्दभरे दिल लिये इकट्ठे हुए थे। विनोबा की गंभीर गिरा प्रकट हुई – ''जो आत्मा अब तक एक शरीर में बंदी थी वह अब विश्वात्मा के साथ एकरूप हो गयी है।''

* * *

पदयात्रा में एक डच सज्जन पधारे। बाबा से कहने लगे ''विनोबाजी ! मैं आपके भारत में आया था गांधीजी को देखने। मैं दिल्ली गया, बंबई गया, कई जगह घूमा। पर गांधी कहीं नजर नहीं आये ! ''Is he really dead?'' उसकी आंख में अपनी आंख मिलाते हुए बाबा ने दृढ आवाज में कहा ''No Sir ! He Still lives ! वे आज भी जीवित हैं। भूदान और ग्रामदान के क्रांति-कार्य में, सर्वोदय के कार्य में लगे हुए चार-पांच हजार सेवक जो गांव-गांव घूम रहे हैं और तपस्या कर रहे हैं; उनके दिलों में गांधी जिंदा हैं। उनको गांधीजी ही घुमा रहे हैं, और मुझे भी !''

* * *

बापू कहा करते थे कि मुझे सत्य का दर्शन अभी हुआ नहीं है। कुछ लोग मानते हैं कि बापू की यह बात सही है, क्योंकि बापू सत्यनिष्ठ थे, तो जो कहते थे वह सही होगा। इस बात का जिक्र बाबा कई बार करते हैं और कहते हैं कि बापू को सत्य का दर्शन हुआ था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातं अविजानताम्"

— जो कहता है कि मैं जानता हूं, वह कुछ नहीं जानता है और जो कहता है कि मैं नहीं जानता हूं वह जानता है। इसकी एक पहचान यह है कि अंत में बापू ने 'राम' कहा। भगवान को याद किया। **जनम जनम मुनि जतन कराही। अंत राम कछु आवत नाहीं।**" मुनिजन अनेक जन्मों तक यत्न करते हैं फिर भी अंतकाल के समय भगवान का नाम मुख में नहीं आता है। और यहां तो जैसे ही गोली लगी, मुख से निकला 'हे राम !' यह रामनाम अगणित लोग लेते हैं। यानी बापू नें नाम में भी सर्वसामान्य जड जीवों से हम अलग हैं ऐसा नहीं दिखाया। उन्होंने ॐ या ऐसा कोई निर्गुण निराकार वाला नाम नहीं लिया। यानी नाम में भी उन्होंने दर्जा नहीं रखा, सामान्य जनता के साथ वे एकरूप ही गये।

* * *

व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय बापू ने विनोबा को बुलावा भेजा। विनोबा पवनार से सेवाग्राम गये। सारी बातें हुई। आखिर बापू ने पूछा "तुम्हारे सिर पर बहुत काम होंगे। उनको निपटाने के लिए तुम्हें समय चाहिए?" विनोबा ने जवाब दिया "बापू ! काम मेरे सिर पर नहीं है, हाथ में है। जब चाहे छोड सकता हूं। उसके लिए मुझे यहां से वापस पवनार जाने की भी जरूरत नहीं है। आपका हुक्म मेरे लिए यमराज का हुक्म है।" ...इस घटना का जिक्र करके कभी बाबा कहते हैं, "मैंने इसे इशारा समझ लिया कि बापू मुझ पर इस देश की सेवा की जिम्मेवारी सौंप रहे हैं। इसके बाद वेलोर जेल में मैंने दक्षिण भारत की भाषाओं का अध्ययन शुरू कर दिया।"

भारत-चीन संघर्ष हुआ। उस वक्त कई लोगों ने विनोबा से कहा "यदि बापू आज होते तो यूं करते।" विनोबा ने कहा "जो लोग कहते हैं कि इस वक्त गांधीजी होते तो वे यह करते, उन्हें गांधीजी का अंतर्यामी होना चाहिए। समझने की बात है कि "**लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति**" — लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को कौन जान सकता है? — इस वक्त गांधीजी होते तो क्या करते, इसका निर्णय देकर कुछ सोचना गलत बात है। ऐसा करके हम उन पर भी अन्याय करते हैं और अपने पर भी। आज बापू होते, तो दुनिया में क्या-क्या फर्क पडता, अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्या फर्क पडता, इसका अंदाज हम नहीं लगा सकते। उनके अस्तित्व का कितना असर पडता? उनका होना और न होना कोई मामूली बात नहीं है।"

भारत-चीन संघर्ष की बात छोडें। पर, कई बार, कई मौकों पर लोग बाबा के पास आते हैं और कहते हैं, "बापू होते तो यूं करते, आपको भी ऐसा करना चाहिए।" बाबा हंस देते हैं और कहते हैं, "तुम्हारी तडपन मैं समझ सकता हूं। पर एक बात तुम भूलते हो। वे थे शंकर। शंकर नाचता है तो वह तांडवं नृत्य कहलाता है और दूसरा कोई नाचता है तो वह नंगा नाच कहलाता है ! बापू में जो शक्ति थी वह मुझमें कहां !" — बापू की शक्ति की महिमा वर्णन करते हुए बाबा कहते हैं, "आंदोलन शुरू करना तो आसान होता है पर उसे वापस खींचना कोई आसान और साधारण बात नहीं है। ऐसे महापुरुष विरले होते हैं जो कि आंदोलन शुरू भी करते हैं और उसे वापस खींचते भी हैं। वेद में आया है—

तत् सूर्यस्य देवत्वं तत् महित्वम् ।
मध्या कर्तोर् विततं संजभार ।।

सूर्य अपनी किरणों को खोल देता है और वापस खींच भी लेता हैं। बापू में खींचने की भी शक्ति थी, जो असाधारण थी।

* * *

बापू का वर्णन करते हुए कई लोग उन्हें श्रेष्ठ मुत्सद्दी वगैरा कहते हैं। लेकिन बाबा कहते हैं — "बापू के मुख में भगवान का नाम नहीं होता, अध्यात्म की भाषा नहीं होती, तो मैं उनके पास नहीं जाता। लोग उन्हें मुत्सद्दी, नेता आदि समझते हैं पर वह सही नहीं है। वे आध्यात्मिक पुरुष थे, साधक, ज्ञानी थे। वे सिर्फ लीडर होते तो मैं उनके पास नहीं जाता।"

* * *

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काशी के रास्ते में एक बडे शहर में मुकाम था। पुराने साथी मिले, पुरानी बातें छिडीं। बापू कितने ही पत्र लिखा करते ! कितनी याद रखते ! बाबा ने कहा 'हां, यह सब ठीक है। वे हर व्यक्ति की पूछताछ करते, हर साथी को पत्र लिखते। उनके साथ रहे हुए हर व्यक्ति को लगता था कि बापू मेरे हैं। यह सारा ऊपर-ऊपर से देखें तो लगता है कि बापू कितने आसक्त थे। लेकिन उनका यह सारा नाटक था। वे ऊपर से जितने आसक्त दीखते थे उतने ही अंदर से बिलकुल अनासक्त थे।''

* * *

कितने ही प्रसंग याद आते हैं, जिसमें बापू की स्मृति से बाबा की आंखें गीली हो जाती हैं। अपनी भावसृष्टि में बाबा जब बोलते हैं, दुनिया को भूल जाते हैं। पर जब विचार की बात करते हैं, ''क्या अहिंसा गांधी के बाप की इस्टेट है ? अहिंसा अगर उनकी रहेगी तो फलेगी फूलेगी नहीं। वह हमारी होगी तभी उसका विकास होगा।''

इन ग्यारह सालों में बापू की कितनी ही कहानियां हमने बाबा के मुख से सुनीं। पर इन सबमें से एक चित्र मेरे मन पर अंकित हो गया है, और बाबा के शब्द आज भी कानो में गूंजते हैं। हम सब यात्रीदल के भाई-बहन उनके इर्दगिर्द बैठे थे। बापू की बात बाबा कहते थे। आंखें मूंद लीं थी, व्याकुलता छिपी नहीं थी; आखिर कहा – ''वे हुक्म देते और मैं उनकी आज्ञा का पालन करता, यही मेरा आज तक का जीवन रहा है।''

[पृष्ठ 355 से आगे –]

'लोभ' की आसुरी वृत्ति ने तो तहलका मचा दिया है। उसने प्रचंड विनाशक 'भेदासुर' को पैदा किया है। इसका सरल उपचार है, हर कोई श्रमनिष्ठ बने और यथाशक्य दान और त्याग करें। इसी का संदेश करुणामूलक भूदान-यज्ञ ने दिया है।

आसुरी वृत्ति की वैसे कोई स्वतंत्र हस्ती नहीं है। किसी-न-किसी गुण की छाया के रूप में वह आ जाती है। कभी गुण का अतिरेक ही उसे आसुरी बना देता है। गुण के बारे में बाबा ने जो कहा, याद आता है।

सन् 1967 की बात। उन दिनों सुशीलादीदी और मैं बाबा के पास बिहार में थीं। सहज बातों में बाबा कहने लगे, ''गुण का क्या है? एक मध्यबिंदु होता है। उस बिंदु से इधर या उधर खिसक गये, तो दुर्गुण हो जाता है।

अनाचारस्तु मालीन्यम्
अत्याचारस्तु मूर्खता
द्वयोर्मध्ये सदाचारः ।

– जितना आचार चाहिए उससे कम किया तो मालीन्य, ज्यादा किया तो मूर्खता। दोनों के बीच है सदाचार। – खाने में नमक डालते हैं, उसकी एक मात्रा है। मात्रा कम हुई, ज्यादा हुई, दोनों में रुचि नहीं। वही न्याय गुणों पर लागू होता है। इसलिए 'समत्व' चाहिए।''

इस तरह इस 16 वें अध्याय में 'संग्राम' की नहीं, 'समत्व' की बात कही है। आर्थिक, सामाजिक आदि छोटे-छोटे साम्यों को संभालते हुए, अंतिम परम-साम्य तक पहुंचने का रास्ता इस अध्याय में भी प्रशस्त हुआ है।

———*———

ईसामसीह ने अपने शिष्यों के पैर धोये थे। शिष्य को गुरु से अधिक आदरणीय दूसरा दैवत नहीं। परंतु गुरु को भी शिष्य से बढकर आराध्य दैवत नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वाध्याय 'विचारपोथी' का

मीरां भट्ट

समानधर्मी साधकों का सहाध्याय चले, इस दृष्टि से यह मैं एक नया उपक्रम शुरू करने जा रही हूं। विनोबा-विचार के अभ्यासु लोगों के लिए विनोबाकृत 'विचारपोथी' सहाध्याय के लिए उपयुक्त होगी, इस दृष्टि से विचारपोथी के आधार से सहचिंतन का यह सिलसिला होगा। आशा है कि मित्रों को इससे मदद मिलेगी।

इत्तिफाक से आज 11 सितंबर ही है। विनोबाजी का बहुत सारा व्यक्तित्व अप्रकट ही है। उनकी यह 'विचारपोथी' भी अप्रकट ही रहती, यदि साथियों से उसकी नकलें करने में गलतियां न होतीं। विनोबाजी थे चिंतनपुरुष। 'चिंतन में से प्रयोग और प्रयोग में से चिंतन, ऐसी मेरे जीवन की गठन वन गई है।' – यह उन्होंने ही कहा है।

विनोबा के लिए विचार प्रसिद्धि और प्रचार का विषय नहीं था; वे तो उसका 'प्रकाशन' चाहते थे। उजाले में चीज अधिक उजागर होती है, वैसे प्रकाशन की मदद से विचार खुलता है। 'विचारपोथी' की चिंतनकणिकाएं बहुत-सी अप्रकट और थोडी-सी प्रकट है। उसे छापने का उनका कोई विचार ही नहीं था। सहज अपनी खरडवही में कभी-कभी कुछ लिख लिया करते थे। वही पोथी विनोबा के निकटवर्ती साधकों में बारह साल तक घूमती रही। उनके लिए विनोबा का एक एक शब्द रहस्यगर्भित था। एकदम तो सारे शब्द खुलनेवाले नहीं थे इसलिए अपनी-अपनी पोथियों में नकल उतरती गयी और नकल को तो अपनी अकल होती नहीं, तो कभी नर का वानर होता था ! आखिर उसे प्रकाशित करने की सम्मति विनोबा को देनी ही पडी।

विचारपोथी की सामग्री विनोबा के अनुसार न सुभाषित है, न सूत्र है। विनोबा इसे 'पुटपुटाना' कहते हैं। मतलब सहज उद्‌गार। चिंतन-मनन से जो तथ्य उभरते आये उसको अपनी पोथी में लिखते गये, जिनका न कोई क्रम था, न कोई पूर्वापर संबंध या संदर्भ !

विनोबाजी ने उसे वाचाऋण-परिहार माना है। प्रभु ने हमें वाणी दी। किसलिए ? **वदन दिये, हरिगुण गाने को...** मतलब, इसका हर शब्द प्रभुता से जुडा हुआ है। ये सारी कणिकाएं प्रभु के आकाश की तेजकणिकाएं हैं। मतलब प्रत्येक विचार आखिर में प्रभु के पास पहुंचानेवाला है।

ये विचारकण सागरबिंदु जैसे हैं। हर बिंदु में सिंधु समाया हुआ है। बिंदु में समाये सिंधु को ढूंढना पडता है। इस लेखमाला के सहाध्याय में हम कोशिश करेंगे कि गूढार्थ कुछ अंश में खुले। इस तरह से यह स्वाध्याय नहीं, सहाध्याय होगा, जिसमें सब पाठकगण शामिल होंगे और समय-समय पर चिंतन करके वे अपना भी योगदान देते रहेंगे।

प्रथम चिंतनकणिका है – **आध्यात्मिक व्यवहार यानी स्वाभाविक व्यवहार यानी शुद्ध व्यवहार ।**

व्यवहार के दो अर्थ होते हैं। व्यवहार यानी वर्तन, आचरण। हमारा आचरण आध्यात्मिक कब माना जायेगा ? जब वह सहज होगा, अकृत्रिम होगा, स्वाभाविक होगा, जैसा कि बच्चे का व्यवहार। बच्चा कभी आगे-पीछे का विचार करके, हिसाब करके बोलता नहीं। सहज अपने मन में जो आता है, वह कह देता है।

राजा की कहानी है न ? नित नये-नये पोशाकों का शौकीन ! शाही दर्जी को हुकम मिला कि बारीक से बारीक कपडे का पोशाक बनाओ। दर्जी एकेक ड्रेस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तैयार करके देता गया परंतु सभी नामंजूर हुए। आखिर उसने ऐसा पोशाक बनाया जिसे देखकर मुख्य प्रधान से लेकर सारे मंत्रीगण दिङ्मूढ हो गये। पर ऊपर-ऊपर से वाह! वाह! करने लगे। पूरे दरबार को पूछा गया तब भी सभी लोग प्रशंसा ही के बोल बोल रहे थे। उतने में एक छोटा-सा बच्चा बोल उठा, 'राजा नंगा ! राजा नंगा !...

आखिर बेचारा वह बच्चा ही जो था। उसे नतीजे से क्या वास्ता ! जो देखा सो बोल लिया ! उसमें कोई मिलावट नहीं थी। तो सहज विचार होता है, वह शुद्ध होता है। उसमें किसी प्रकार की सभानता, कृत्रिमता, आडंबर नहीं होता। **बाहिर-भीतर एक ही जानो...**।

व्यवहार का दूसरा अर्थ है – पारस्परिकता। हमारे आपसी संबंध को व्यवहार कहते हैं। वह कैसा होना चाहिए? तो सोचें कि सृष्टि हमारे साथ कैसे पेश होती है? रोज बडी फजर भगवान सूर्यदेव हमारी सेवा में हाजिर हो जाते हैं तो क्या वे ढोल-नगारे पीटते हुए आते हैं? गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने कहा – *शांत तोमार छंद !* सृष्टि का व्यवहार शांत है, अकृत्रिम है। उसमें कोई सभानता, दिखावा या छलना नहीं होती। जैसा भीतर है वैसा ही बाहर ! ...

मनुष्य अशांत कब होता है? मन के भीतर कुछ असत्य पडा हो तब वह अस्वस्थ हो जाता है। जैसा नहीं है, वैसा दिखाने में मनुष्य कृत्रिम हो जाता है। उसका सहज व्यवहार नहीं होगा।

हमारा अनेकों से संबंध आता है। उन विविध संबंधों में हमें परस्पर कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसका निदर्शन हमें भगवान ईसा की तीन आज्ञाओं में अच्छी तरह से मिलता है। ईसा मसीह की प्रथम आज्ञा है – **लव वन-अनदर ऍज आई हैव लव्हड यू** – एक-दूसरे को प्यार करो, जैसा मैंने तुम को प्यार किया।...

भगवान का हम पर कैसा प्यार है, क्या यह किसी को पूछना पडेगा ? हम सब जानते हैं कि हमारे प्रभु, हमारे गुरु, हमारे मार्गदर्शक हमारे साथ कैसे पेश होते हैं ! उनके हम पर अगणित उपकार होते हैं।... तो सहज दिशा दिखला दी कि हमने आपको चाहा, वैसे तुम एक-दूसरे को चाहो।

दूसरी आज्ञा दी – **लव दाई नेबर ऍज दाई सेल्फ** – अपने पर प्रेम करते हो उतना प्रेम पडोसी पर करो ! हमारा हम पर कितना प्यार होता है ? कभी-कभी तो खुदा से भी खुद ज्यादा प्यारा लगने लगता है। अपने को हम कितनी सहजता से माफ भी कर देते हैं? उतनी सहजता से, प्रेम से, क्षमाशीलता से, समझपूर्वक अपने पडोसियों को भी चाहे, यह है आध्यात्मिक व्यवहार, शुद्ध व्यवहार !

तीसरा व्यवहार करना है दुश्मनों के साथ। राग-द्वेष के कारण शत्रु निर्माण हो जाते हैं। जन्म से कोई हमारा मित्र-शत्रु नहीं होता। अपने व्यवहार से ही संबंध निर्माण होते हैं। भगवान ईसा ने तीसरी आज्ञा में कोई दिशादर्शन किये बिना ही कह दिया कि शत्रु पर प्यार करो। वे जानते थे कि प्यार करने की प्रक्रिया ही शत्रु को मित्र बना देगी। प्रेम में शत्रुता का ही अंत हो जाता है।

व्यवहार संबंधों में करना होता है। जीवन संबंधो का ही जोड है। पारस्परिकता से ही परिवार और समाज बनता है। जन्म के साथ ही परिवार-समाज के साथ का अनुसंधान जुड जाता है। पारस्परिकता को सुंदर-समृद्ध बनाने के लिए विनोबाजी ने अन्य जगहों पर अनेकानेक प्रक्रियाएं बतायी हैं, जिनको हम दूसरी कणिकाओं में देखेंगे। व्यवहार को आध्यात्मिक बनाने के लिए मनुष्य को 'गुण' का सहारा लेना पडता है। संबंधों का प्रवेश-द्वार ही गुण-दर्शन है। विनोबाजी ने विस्तारपूर्वक गुण-मीमांसा की हुई है। हमारी गीतादीदी ने, इस मीमांसा का विस्तीर्ण विवरण उनके 'गुण-निवेदनम्' नामक 'मैत्री'-विशेषांक के संपादन में अत्यंत सुचारू ढंग से किया है। इधर तो इतना ही जिक्र करूंगी कि परस्पर गुण-ग्रहण व्यवहार को शुद्ध बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

वडोदरा
गुजरात

*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ध्यानयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः [2]

उषा

सर्वभूतात्मैक्य साम्यावस्था

पूर्वयोग-उत्तरयोग दोनों साधना पूर्ण हुई। उसके आगे की अवस्था का वर्णन चार श्लोकों (29-39) में पाया जाता है। योगी के समदर्शन यानी साम्यावस्था की वह अवस्था है। विनोबाजी तो उन चार श्लोकों को गीता-सार ही बताते हैं। भगवद्गीता को किसी ने कर्मयोग तो किसी ने ज्ञानयोग, किसी ने पूर्णयोग तो किसी ने अनासक्तियोग कहा है। विनोबाजी उसे साम्ययोग कहते हैं और उसके लिए इन चार श्लोकों का आधार बताते हैं। अध्याय के प्रारंभ में भगवान ने निर्द्वंद्वतासूचक साम्यावस्था का वर्णन किया था (7,8,9)। बीच के (10 से 28) श्लोकों में पूर्वयोग-उत्तरयोग का वर्णन कर अब भगवान् सर्वभूतात्मैक्य साम्यावस्था का वर्णन करेंगे। उत्तरयोग कथन की समाप्ति पर योगी को ब्रह्मानंद के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। ब्रह्मानंद की उस अवस्था को सुख-दुःखातीत सहज समाधान की अवस्था कह सकते हैं। उस अवस्था में स्थित योगी अभेदभाव में स्थिर होगा। उस अवस्था का वर्णन करते हुए भगवान कहते हैं – सब भूतों में आत्मा भरा है और आत्मा में सब भूत स्थित हैं। इस प्रकार योग-संपन्न पुरुष सर्वत्र समदर्शन करता है (29)। यहां सब भूतों को अपने में और अपने को सब भूतों में देखने की बात कही। योगयुक्तात्मा को जहां भूत और अपने में अद्वैत दर्शन होता है, वहां अपना-पराया भेद मिट जाता है और जड-अजड भेद भी समाप्त हो जाता है। सिद्ध पुरुष के व्यापक आत्मदर्शन की यह प्रथम भूमिका हुई। इसके आगे की भूमिका है, ईश्वरदर्शन की। उस भूमिका में वह सर्व को यानी भूतों सहित अपने को ईश्वर में देखता है और ईश्वर में सबको देखता है (30)। 'सबके साथ मैं परमात्मा' का और परमात्मा मेरा की अनुभूति उसे ईश्वर के साथ की एकरसता का अनुभव कराती है। ईश्वर के साथ वह अपने को सतत एकरूप महसूस करता है। तो प्रथम अपने-पराये भेद को मिटाया और आत्मा व भूतों में अभेद बताया। आत्मा और भूत एक-दूसरे में मिल जाते हैं और जो 'सर्व' बनता है, उस 'सर्व' को ईश्वर में और ईश्वर को उस सर्व में देखना द्वितीय भूमिका हुई। सब भूतों के साथ अभेद दृष्टि और ईश्वर के साथ अभेद दृष्टि; इस प्रकार सिद्ध पुरुष की द्विविध श्रेणी बतायी। इसके आगे भगवान सिद्ध पुरुष की साम्यावस्था का जिक्र करते हुए कहते हैं कि जो योगी एकत्व में स्थिर होकर सब भूतों में मुझे भजता है, वह योगी किसी भी अवस्था में रहे, मुझमें ही रहता है (31)। यहां भगवान एकत्व में स्थिर होने की बात बताते हैं। एकत्व की भूमिका में किसी भी प्रकार के भेद के, विषमता के लिए अवसर नहीं रहता। वह परमसाम्य की अवस्था है। जो एकत्व में अनेकत्व और अनेकत्व में एकत्व देखेगा, वह परमसाम्य की उस अवस्था में स्थिर रहेगा। तेरहवें अध्याय में भगवान कहते हैं कि जो भूतों के पृथक्त्व को एकत्व में पिरोया हुआ और फिर उसी एकत्व में से संपूर्ण विस्तार को देखता है, उसे ब्रह्मस्वरूपता प्राप्त होती है – **ब्रह्म संपद्यते तदा** (13.30)। एकता में विविधता या पृथक्ता और पृथक्ता में एकता, दोनों प्रक्रिया मिलकर ज्ञान को संपूर्णता आती है। एकत्व में अनेकत्व देखना विश्लेषण प्रक्रिया है। वह साइन्स की प्रक्रिया है। और अनेकत्व में एकत्व देखना संश्लेषण प्रक्रिया है। वह आत्मज्ञान की प्रक्रिया है। दोनों मिलकर ज्ञान प्रक्रिया पूर्ण होती है। ईश्वर-दर्शन की वह परिपक्व अवस्था है। सर्वात्मक ईश्वर का यह दर्शन जिसे आत्मसात् होता है, उसका

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूरा जीवन भक्तिमय बन जाता है। वह कहीं भी रहे, ईश्वर में ही रहता है। उसका खाना-पीना बोलना-बैठना सब ईश्वर में ही होता है। उसकी हर कृति ईश्वर-भजनरूप बनती है। उसके भोग को भी भक्ति का रूप आता है। उसको गुस्सा आता है तो वह भी सामनेवाले के साथ के एकत्व में से ही उत्पन्न होता है, अतः तब भी वह ईश्वर में ही रहता है। गंगा की लहर पानी पर ही रहती है, वैसे योगी कहीं भी हो और कैसा भी हो ईश्वर में ही रहता है।

इस प्रकार ईश्वर में निरंतर निवास करनेवाले महापुरुष के लिए भगवान कहते हैं कि जो आत्मौपम्य बुद्धि से सर्वत्र समानता देखता है, जैसा सुख वैसा ही दुःख, वह योगी श्रेष्ठ माना गया है (32)। यहां भगवान ने आत्मौपम्य बुद्धि की बात कही। आत्मौपम्य यानी अपनी उपमा अर्थात् अपना न्याय दूसरों पर लागू करना। दूसरे से हम जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं वैसा व्यवहार हम दूसरों के साथ करें। 'जैसे के साथ वैसा' व्यवहार करना आत्मौपम्य नहीं कहा जायेगा। कोई हमें गाली दे तो हम भी उसे गाली दें यानी शठं प्रति शाठ्यम् आत्मौपम्य नहीं। हम चाहते हैं कि दूसरा हमसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करे तो हम भी उससे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें। हम नहीं चाहेंगे कि कोई हमें पीडा पहुंचाये। तो हम उसे पीडा न पहुंचायें चाहे वह हमें पीडा पहुंचाये। दूसरी बात यहां बतायी है कि सामान्यजनों के सुख-दुःख के साथ समरस होने की। अब यहां प्रश्न उठ सकता है कि सुख-दुःखातीत हुए योगी को दूसरों के सुख-दुःख का कैसे पता चलेगा? थर्मामीटर को खुद को बुखार नहीं रहता इसलिए वह दूसरों के बुखार को ठीक-ठीक बताता है। वैसे जो खुद निर्विकार है, जिसके खुद के सुख-दुःख नहीं, वही दूसरे के सुख-दुःख को ठीक-ठीक नाप सकता है। साम्य में स्थित योगी पूर्ण निर्विकार और तटस्थ रहता है। वह दूसरों के सुख-दुःख से अभिभूत नहीं होता है। जो अभिभूत होता है, वह दूसरों को मदद नहीं कर सकेगा। दुःखी मनुष्य की सहानुभूति में रोनेवाला उसका दुःख निवारण नहीं कर सकेगा बल्कि उसका दुःख देखकर वह भी उसके साथ बह जायेगा। जो अभिभूत नहीं होता और तटस्थ है, वही दूसरों के दुःखनिवारण करने में सहायभूत हो सकता है। उसे दूसरों के दुःख का ठीक-ठीक अंदाज भी आता है। अन्य लोगों की कल्पना इतना ठीक अंदाज नहीं लगा पाती। तटस्थ ज्ञानवान योगी को सामनेवाले के सुख-दुःख का सही-सही अंदाज आ सकता है। रोनेवाले या बह जानेवाले को सही अंदाज नहीं रहता। पूर्णतया निर्विकार चित्त को ही हम तटस्थ चित्त कह सकेंगे और वही दूसरों के सुख-दुःख का यथार्थ मापन कर सकता है। आत्मौपम्य की इस बात को हम गीता का नैतिक सूत्र कह सकते हैं।

श्लोक 28 से 32 में इस प्रकार भगवान ने सर्वभूतात्मैक्यरूप साम्ययोग का विवरण किया। वैसे छठा अध्याय ध्यानयोग का अध्याय माना जाता है। उस दृष्टि से उसे 'आत्मसंयम योग', 'अभ्यासयोग', 'चित्तवृत्तिनिरोध योग', 'ध्यानयोग' जैसी संज्ञाएं दी गयी हैं। श्लोक 28 तक भगवान ने उसी विषयवस्तु को केंद्र में रखकर सारा विवेचन किया है। यानी छठे अध्याय का विषय तो है, ध्यानयोग। परंतु वह सारी साधना किस चीज की प्राप्ति के लिए कही गयी है? ध्यानयोग का हेतु क्या है? अर्जुन के प्रश्न में वह बात प्रतिध्वनित होती है। अर्जुन कहता है कि तुमने साम्य द्वारा जो योग कहा – योऽयं योगः त्वया प्रोक्तः साम्येन। अर्थात् ध्यानयोग का हेतु है साम्ययोग। साम्ययोग के लिए ध्यानयोग एक साधन है। वैसे भी साम्य की बात गीता में जगह-जगह पर आयी ही है। विनोबाजी कहते हैं कि अर्जुन द्वारा यहां गीता को दिया गया साम्ययोग नाम अत्यंत श्रेष्ठ है। साम्य गीता का ध्रुवपद है ही। साम्ययोग ज्ञानयोग, कर्मयोग, पूर्णयोग आदि सब नामों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का समावेश करनेवाला नाम है। विनोबाजी के मत से साम्ययोग गीता का सार ही है, और उसको यहां अर्जुन के कथन का आधार भी है।

चंचल मन

अर्जुन ने साम्ययोग शब्द का सूत्र-उच्चारण कर दिया। परंतु उसी को लेकर प्रश्न पूछता है, चंचल मन के कारण मैं उसकी स्थिरता संभवनीय नहीं देखता। यह मन चंचल है, हठी है, बलपूर्वक सताता रहता है। वह मानो हवा पर दौडता है और उसका निग्रह दुष्कर दीखता है (33,34)। मनोनिग्रह की बात कठिन है। अर्जुन ने इस प्रश्न द्वारा सबके मन की बात पूछी है कि सतत दौडते रहनेवाले मन को कैसे वश करें? वह एक ओर से चंचल है और दूसरी ओर से हठीला है। चंचलता के कारण यहां-वहां घूमता रहेगा और हठीला यानी अडियल, एक जगह बैठा तो बैठा ही। वहां ही रुका रहेगा। दोनों बांजु से दुःसाध्य। दौडता तो रहता ही है, परंतु अगर कभी एकाध अच्छी बात पकडी तो फिर हठीलेपन के कारण उसे चिपका रहेगा। उसी हठीलेपन का लाभ उठाकर उसकी चंचलता मिटायी जा सकती है।

अर्जुन के प्रश्न को मान्यता देते हुए भगवान चंचलता को नाथने का उपाय बताते हैं – निःसंशय मन दुःसाध्य है, चंचल है किंतु अभ्यास और वैराग्य इन दो साधनों से उसका निग्रह हो सकता है (35)। मन को वश करने के लिए भगवान ने यहां विधायक निषेधक दो पहलू बताये। अभ्यास यानी असकृत् आवृत्ति। मन को वश करने का वह विधायक उपाय है। किसी एक अच्छी चीज को पकडकर उसकी बार-बार आवृत्ति करते रहना अभ्यास है। और दूसरा निषेधक पहलू है वैराग्य अर्थात् अनिष्ट विषयों के बारे में वर्ज्य भावना। वैराग्य के साथ अभ्यास का होना जरूरी है। अकेली निषेधक साधना पर्याप्त नहीं। मीराबाई ने कहा – 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई'। उनके इस कथन में 'मेरे तो गिरधर गोपाल' विधायक बात है और 'दूसरा न कोई' निषेधक। गिरधर गोपाल के लिए इतना तीव्र अनुराग है कि बाकी किसी चीज का तनिक भी आकर्षण नहीं। चित्त सतत गिरधर गोपाल के चिंतन में इतना व्यस्त है कि बाकी सबके लिए सहज ही वैराग्य है। इसी बात को अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान आगे कहते हैं कि मैं मानता हूं कि बिना संयम यह योग सधना कठिन है। परंतु जिसने अपने चित्त को वश कर लिया है, उसको उपायों से वह साध्य होता है (36)। जिसमें अभ्यास-वैराग्य का बल नहीं वह असंयमी, असंयतात्मा। उसके लिए ध्यानयोग कठिन बात हो जाती है। किंतु जिसका चित्त अभ्यास-वैराग्य उभय शक्तिसंपन्न है, प्रयत्न करने पर उसे साम्यचिंतनरूप साधना से यह योग सधता है।

योगभ्रष्ट

चित्त की चंचलता संबंधी प्रश्न का उत्तर तो अर्जुन को मिल गया। अब उसके मन में नया प्रश्न उपस्थित हुआ है – श्रद्धा तो है किंतु प्रयत्न नहीं है, ऐसे योगमार्ग से चलित हुआ मनुष्य योगसिद्धि से वंचित रह जाता है तो उसे कौन-सी गति मिलेगी? ऐसा उभयभ्रष्ट मनुष्य ब्रह्ममार्ग से भ्रांत होकर, निराधार बनकर, छिन्न-विछिन्न हुए बादल की भांति नाश पाता है? हे कृष्ण! मेरे इस संशय का निःशेष निरसन तू ही कर। तेरे बिना दूसरा कोई नहीं दीखता, जो इसका निरसन कर सके (37,38,39)।

अर्जुन कहता है, श्रद्धा है परंतु यत्न नहीं है। इसके त्रिविध कारण हो सकते हैं – 1. बीच में ही मृत्यु ने पछाडा 2. मृत्यु से जूझते हुए मन टिक न पाया 3. जीवन के शेष रहते हुए भी प्रयत्न ढीला होकर मन विचलित हो गया। यहां साधक श्रद्धा से वंचित नहीं हुआ है। चौथे अध्याय में भगवान ने बताया था कि जिसके पास ज्ञान भी नहीं, श्रद्धा भी नहीं उसका विनाश होगा – **अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा**

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विनश्यति (4.40)। यहां ज्ञान नहीं है लेकिन श्रद्धा जरूर है। वह बहुत बडा संबल है। वैसे श्रद्धा है और बीच में ही मृत्यु ने आ पकडा तो साधक को दोष नहीं दे सकते। उसका मन टिक नहीं पाता है तो थोडा दोष साधक पर आयेगा। और अगर जीवन के शेष रहते हुए प्रयत्न ढीला पडा तो साधक पर अवश्य दोष आयेगा। फिर भी श्रद्धा है तो बचाव है, और भगवान उसे आगे कहते भी हैं – **न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति**, कल्याणमार्ग का पथिक कभी दुर्गति को नहीं पाता। यत्नहीन योगी को अर्जुन ने उभयभ्रष्ट कहा है। उभयभ्रष्ट का सामान्यतः अर्थ लिया जाता है, संसार और योगसिद्धि दोनों मार्ग से च्युत हुआ। योगसिद्धि के लिए संसार छोडा, मृत्यु आ गयी और योगसिद्धि भी प्राप्त नहीं हुई – इस प्रकार संसार और सिद्धि उभय से वंचित रह गया। किंतु यहां साधक योग-साधना के लिए संसार तो पहले ही छोड चुका है। इसलिए उभयभ्रष्ट में संसार छूटने का प्रश्न नहीं। मृत्यु आ गयी, सिद्धि नहीं मिली। तो सिद्धि छूटी और मृत्यु के कारण साधना भी छूटी। तो उभयभ्रष्ट यानी योगसाधना और योगसिद्धि दोनों से हाथ धोना पडा। उसने पूर्ण श्रद्धा के साथ योगसाधना शुरू की थी, पर तीव्र वेग से प्रयत्न न हो सका और मृत्यु ने योगसाधना खंडित कर दी। इस प्रकार न योगसिद्धि मिली और योगसाधन भी गया तो फिर हाथ में क्या आया? उत्तर में भगवान कहते हैं कि मृत्यु के कारण योगसाधना छूटी नहीं है। वह आगे जारी रहनेवाली है और समय पकने पर योगसिद्धि भी मिलेगी। दोनों छूटे नहीं। श्रद्धा कायम है तो मृत्यु से साधना खंडित नहीं होती। फिर अर्जुन कृष्ण को कहता है कि मेरे चित्त में यह जो संशय उठा है, उसका निरसन तेरे बिना और कोई नहीं कर सकता। गीता में कृष्ण अर्जुन का सिर्फ सखा नहीं है, गुरुमूर्ति है। और ऐसा गुरु जो ज्ञानमूर्ति भी है और प्रेममूर्ति भी है। प्रेम खींचता है, ज्ञान नियंत्रण में रखता है। दोनों जहां इकट्ठे होते हैं, वहा व्यक्ति समर्पित हो जाता है। अर्जुन का कृष्ण के लिए ऐसा समर्पणभाव यहां प्रकट हुआ है।

योगभ्रष्ट संबंधी अर्जुन के प्रश्न का समाधान करते हुए भगवान कहते हैं, न इस लोक में, न उस लोक में वह (योगमार्ग का साधक) कभी नाश पाता है। हे तात! कल्याणमार्ग का पथिक कभी दुर्गति को नहीं पाता है (40)। भगवान कहना चाहते हैं कि मृत्यु योगसाधना के मार्ग में रुकावट नहीं डाल सकती। योगमार्ग के पथिक की साधना आगे आनेवाले जन्मों में चालू रहती है। उसकी स्पष्टता करते हुए आगे भगवान कहते हैं, वह योगभ्रष्ट दीर्घकाल तक पुण्यलोक में रहकर शुचि और साधनवान के घर जन्म लेता है। या तो फिर प्राज्ञयोगी के कुल में जन्म लेता है। निःसंदेह ऐसा यह जन्म लोक में दुर्लभ है (41,42)। **शुचीनां श्रीमतां गेहे** यानी पवित्र, नीतिमान और साधनसंपन्न के घर जन्म लेता है और वहां अपनी साधना आगे बढाता है। ऐसा जन्म मिलना दुर्लभ कहा जायेगा। लेकिन उससे भी अधिक दुर्लभ माना जायेगा प्राज्ञयोगी के कुल में जन्म पाना। **शुचीनां श्रीमताम्** से **धीमतां योगिनाम्** कुल श्रेष्ठ। शुचि से योगी श्रेष्ठ और श्रीमताम् से धीमताम् श्रेष्ठ। शुचि साधनवान से प्राज्ञ योगी श्रेष्ठ। शुचि यानी नीतिमत्ता, प्राज्ञयोगी यानी आध्यात्मिकता। नैतिक मूल्यों से आध्यात्मिक मूल्य श्रेष्ठ निर्विवाद है।

इस प्रकार योगभ्रष्ट शुचि-साधनवान या प्राज्ञ योगी के कुल में जन्म लेता है और फिर वहां वह पूर्वजन्मों का बुद्धि संस्कार प्राप्त कर पूर्व प्रयत्न से आगे, पुनः मोक्षार्थ प्रयत्न करता है (43)। यानी उसकी यात्रा चालू है। पूर्वजन्म के बुद्धि-संस्कार की पूंजी लेकर वह आगे बढता है। यह योगभ्रष्ट का प्रकरण है। यानी मृत्यु ने जिसकी योगसाधना खंडित की है, ऐसे योगी का यहां जिक्र है। पूर्वजन्म के योगबुद्धि के संस्कार की पूंजी उसके पास जमा है। पूर्वजन्म के अन्य बुद्धि संस्कार भी होते हैं। वे संस्कार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो इस जन्म के पुरुषार्थ से कम-ज्यादा हो सकते हैं या उतने ही रह सकते हैं। किंतु योगबुद्धि संस्कार इस जन्म के पुरुषार्थ को सही दिशा में मोड सकने का सामर्थ्य रखते हैं। योगभ्रष्ट की पूर्वसाधना की पूंजी उसकी आगे की यात्रा का मार्ग प्रशस्त करती है। जिसके पूर्वजन्म के योगसंस्कार का बल प्रबल है, उसके संबंध में भगवान आगे विधान करते हैं, पूर्वाभ्यास के बल से परतंत्र ही खींचा गया वह योग की जिज्ञासा से ही वेदों को लांघ जाता है (44)। योगी को यहां पूर्वाभ्यासवश परवश बताया। उसके पूर्वाभ्यास का बल इतना सक्षम है कि उसकी जिज्ञासा मात्र उसे वेद को अर्थात् शब्दब्रह्म को लांघ जाने का सामर्थ्य प्रदान करती है। यहां जिज्ञासामात्र से वेद को लांघ जाने के सामर्थ्य का जिक्र है। योग आत्मसात् होने की बात अभी आयी भी नहीं, सिर्फ योगजिज्ञासा का ही जिक्र हुआ है। केवल योगजिज्ञासा से ही शब्दाभ्यास की आवश्यकता समाप्त कर दी गयी। यहां भगवान कहना चाहते हैं कि जिज्ञासा निमित्तमात्र होकर उतने से अतिशीघ्र ज्ञानप्राप्ति होती है और शब्द की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

प्रयत्न करनेवाला योगी अपने दोष जलाते-जलाते अनेक जन्मों में संपूर्ण होकर परमगति अर्थात् मोक्ष को पाता है (45)। अनेक जन्मों की साधना के फलस्वरूप परमगति अर्थात् पूर्णता मिल सकती है। उसके लिए जल्दबाजी न करे। यथासमय वह होगी ही। जरूरत है सतत जागृत रहकर, दोष शोधन करते रहने की। साधक उसके लिए तत्पर रहे।

उपसंहार

योगभ्रष्ट की गति के संबंध में भगवान ने अर्जुन के प्रश्न का उत्तर दिया। अब पूरे विषय का उपसंहार करते हुए अंतिम दो श्लोकों में कहते हैं – ज्ञानी, तापस, कर्मिष्ठ इन सबसे योगी श्रेष्ठ माना गया है। इसलिए हे अर्जुन, तुम योगी होओ। और सर्व योगियों में भी जो मुझमें अंतःकरण रखकर श्रद्धापूर्वक मुझे भजता है, वह मुझे श्रेष्ठ लगता है (46,47)।

अध्याय के अंत में भगवान अर्जुन को आज्ञा देते हैं – तुम योगी होओ – **तस्माद् योगी भव अर्जुन**। यहां भगवान ज्ञानी, तापस, कर्मिष्ठ का जिक्र करते हुए कहते हैं कि योगी से ज्ञानी होना सुलभ, ज्ञानी से तपस्वी और तपस्वी से कर्मिष्ठ होना सुलभ। ज्ञानी बुद्धिप्रधान साधक, तापस यानी तपस्वी – भावनाप्रधान साधक, कर्मिष्ठ – कर्मप्रधान साधक। सातवें अध्याय की भाषा में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी। वहां तीनों से भगवान ज्ञानी को श्रेष्ठ बतलाते हैं। वहां ज्ञानी यानी सर्वांगी भक्त। आर्त-जिज्ञासु-अर्थार्थी तीनों के गुण का जिसमें समन्वय हुआ है वह ज्ञानी। वैसे यहां योगी में ज्ञानी, तापस, कर्मिष्ठ तीनों एकत्र हुए हैं। छठे और सातवें दोनों अध्यायों में ज्ञानी भिन्न-भिन्न अर्थ सूचित करते हैं। सातवें अध्याय का ज्ञानी सर्वांगी भक्त है। छठे अध्याय का ज्ञानी जिज्ञासु साधक है, योगी उससे श्रेष्ठ है। श्रेष्ठत्व का इस प्रकार का प्रतिपादन उस-उस अध्याय के विषय-विवरण के अनुरूप माना जायेगा।

अंत में भक्त की महिमा गाते हुए भगवान कहते हैं कि श्रेष्ठ माने हुए योगियों में भी जो योगी भक्त होकर रहता हैं, वह मुझे विशेषरूप से प्रिय है। उस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने के बाद भी भक्ति चालू रहे, उसकी ओर भगवान का इशारा है। वैसे करीब सब अध्यायों में पूरे उपदेश का पर्यवसान भक्ति में करना गीता को प्रिय है। वैसे यहां भी योगी का श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करके भगवान उसे भक्ति का आधार दिखा रहे हैं। पारमार्थिक साधना के प्रारंभ और पर्यवसान में ईश्वर रहने से साधना सुलभ बनती है, सक्षम बनती है। तो भगवान अंत में कहते है, **श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्तमो मतः**।

[विनोबाजी की गीताई-चिंतनिका पर आधारित।]

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आश्रम-वृत्त

11 सितंबर, विनोबा-जयंती के दिन सुबह एक छोटा-सा समारोह संपन्न हुआ। सुस्वर में गायी जानेवाली सर्वधर्म-प्रार्थना से वातावरण में भावगांभीर्य निर्माण हुआ। भजन-धुन के पश्चात श्री. रमेशभाई का छोटा-सा भाषण हुआ। अंत में पाठशाला की एक विद्यार्थिनी का भी विनोबाजी के बारे में भाषण हुआ। विष्णुसहस्र-नाम के बाद प्रसाद-वितरण हुआ। *

श्री किशोरलालभाई (मशरूवाला) जब साबरमती आश्रम में थे, उस समय उनके चित्त में अध्यात्म के विषय में तीव्र जिज्ञासा पैदा हुई, जिसके परिणामस्वरूप चित्त संशयाकुल बना। आत्मखोज की अदम्य प्रेरणा ने जीवन में एक ऐसी बेचैनी पैदा की कि आखिर श्रद्धेय श्री. केदारनाथजी के मार्गदर्शन में वे आश्रम से थोडी दूर एकांत में एक झोंपडी में रहने लगे। उस समय श्री. नाथजी के साथ उनका जो प्रत्यक्ष संवाद हुआ, पत्रोत्तर हुआ उसका प्रकाशन 'गुरु-शिष्यांचा हृदय-संवाद' नाम से परंधाम प्रकाशन ने किया है। इस अमूल्य पुस्तक का विमोचन-समारोह ता. 9 सितंबर को वर्धा में, मगन-संग्रहालय में हुआ। पुस्तक का विमोचन श्री नारायणदास जाजू ने किया। श्री नारायणभाई, श्री. बोंबटकर आदि ने किशोरलालभाई के अपने संस्मरण सुनाये। और श्री. बंगसाहब ने पुस्तक का परिचय दिया। *

सितंबर माह स्वाभाविकरूप से अतिथियों के आवागमन का होता है। दिल्ली से श्री. कृष्णकुमारीजी अपने साथी-संगी श्री शांतिबहन तथा रमेशभाई और सुपुत्र श्री. अखिलभाई के साथ आयी थीं। वे मुजफ्फरनगर में महिला इन्टरमिडियेट कॉलेज की प्रिन्सिपल थीं, तब से स्त्री-शक्ति जागरण के निमित्त से हमारे साथ जुडी हुई हैं। उन्होंने इस काम की प्रथम प्रेरणा पायी, निर्मलाबहन देशपांडे से। अपनी कॉलेज के माध्यम से वे शिविर-सम्मेलन-पदयात्रा आदि का कार्यक्रम सतत करती रहीं, आश्रम की बहनों को भी उसमें बुलाती रहीं। उनके और उनके साथियों के प्रयत्न से उस क्षेत्र में बहनों में काफी जागृति आयी।

स्वास्थ्य ने साथ दिया, तब तक वे हमेशा मित्र-मिलन में आती रहीं। वृद्धावस्था की तकलीफ की वजह से अभी दिल्ली में वे अपने पुत्र के साथ निवृत्त जीवन बिता रही हैं। कहती थीं, "दिल्ली आने पर देखा कि सब जन अपने-अपने व्यापार में व्यस्त हैं। किसी को फुरसत नहीं। काम के सिवा विशेष बोलचाल नहीं। शुरुआत में थोडा अखरा; लेकिन फिर ध्यान में आया कि हकीकत में तो यह ईश्वर की बडी कृपा हुई है कि मुझे अब अपने भीतर झांकने का अवसर मिल रहा है। इस मौन-एकांत का उपयोग मैं अंतर्मुख होने में कर पाऊं तो कितना अच्छा होगा ! पहले कॉलेज में काम शुरू करने के पहले मैं हमेशा आंख मूंदकर कुछ क्षण मौन रह जाती थी, उससे कैसी ताजगी मिलती थी! जो कि अब भी मैं फालतू एक मिनट भी नहीं बिताती। नींद अच्छी आती है, और प्रसन्नता भी रहती है। यहां इतने दिन रही। आप सबों का भर-भर कर प्यार मिला, ज्ञान तो मिला ही, मैं धन्य हुई। अब मृत्यु की आहट आयेगी तो मृत्यु का महोत्सव मना सकूं, इतना चाहती हूं। *

ता. 10 को हमारे मित्र श्री. कुसुमबहन और तुलसीराम कांबळी एक सप्ताह के लिए आये हैं। इस दंपति के लिए ब्रह्मविद्या-मंदिर मातृस्थान रहा है। दोनों हृदयविकार के मरीज हैं, फिर भी सब्जी काटने तथा रोटी बनाने जैसे कामों में वे आग्रहपूर्वक शरीक होते हैं। और एक-एक करके सबके साथ मिलते हैं। *

होशियारपुर, पंजाब के हमारे मित्र सत्पालसिंह भी चार-पांच दिन रहकर गये। सत्पालजी अपनी जवानी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में सर्वोदय का काम करते रहे, फिर बंबई गोरक्षा-सत्याग्रह में भी कुछ समय रहे। अभी निवृत्त जीवन जी रहे हैं। ध्यान-साधना की तरफ उनका अधिक झुकाव है। यहां शांति से रहने के लिए आये थे।

श्री सर्वनारायण दास आये हुए हैं। बिहार के वे एक सन्निष्ठ कार्यकर्ता हैं। यौवन की देहरी पर, अभी तो पढाई भी पूरी नहीं हुई थी, भूमि-क्रांति की भेरी सुनकर सर्वोदय-आंदोलन में कूद पडे। जीवन सारा क्रांति-कार्य में गया। आखिर के बंबई गोरक्षा-सत्याग्रह में प्रारंभ के सत्याग्रहियों में आप हैं। वृत्ति चिंतनप्रधान रही। सत्याग्रह-कैंप में 'शांति-सेवक' पत्रिका का संपादन करते थे। करीब 13-14 साल के बाद पारिवारीक कारणों से और कुछ अपनी बढती अंतर्मुखता की वजह से निवृत्त हो गये। पत्नी जानकीबहन के दिवंगत होने के बाद साल में कुछ समय वे यहां बाबा के सान्निध्य में बिताते हैं। *

महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले के पावस गाव में स्वामी स्वरूपानंदजी का आश्रम है। उस पीठ के वर्तमान स्वामी श्री माधवानंदजी ता. 21 को विनोबा-समाधि के दर्शन के लिए आये। बहुत ही भक्तिभाव से बाबाकुटि में गये। फिर हमारे साथ बैठे। वे विनोबा के आध्यात्मिक वाङ्मय के विशेष अभ्यासी हैं। उसमें भी गीताई-चिंतनिका का उन्होंने गहराई से उत्तम अध्ययन किया है। उन्होंने कहा, "पुराने विचारों का खंडन न करते हुए, उन्हें सम्हालकर, उनमें से नयी रचना करके नूतन दिशा दिखाना विनोबा के साहित्य की विशेषता है। उनकी गीताई-रचना बिलकुल उत्स्फूर्त है और जो उत्स्फूर्त है वह दैवी होता है।" फिर आधे घंटे में उन्होंने गीताई-चिंतनिका में प्रस्तुत विनोबा का विशेष चिंतन तथा नवनवीन बहुआयामी अर्थस्फूर्ति के स्थान दिखलाये, उनका कुछ विवेचन भी किया। बहुत अच्छा लगा। आखिर में बोले, सागर की अर्चना जैसे सागर के ही पानी से की जाती है, वैसे विनोबा को मेरे हृदय का अर्घ्य मैं उन्हीं के शब्दों से ही देता हूं।

शीला

श्रद्धांजलि

हमारी मिनु के पिताजी **श्री विरेन्द्र मंडल** 1 सितंबर को दिवंगत हुए। उनकी उम्र 93 साल की थी। बंगाल के मिदनेपुर जिले के बाडबासुदेवपुर गांव के थे। अपने जीवनकाल में वे शिक्षक रहे। सर्वोदय विचार में उनकी बहुत निष्ठा थी। वे स्वातंत्र्य-सेनानी भी थे। भारत सरकार की ओर से उन्हें आदर्श, उत्तम शिक्षक का पुरस्कार मिला था। पिछली ठंड में ही माता-पिता दोनों यहां आकर गये। गत कुछ महीनों से वे बीमार थे। काफी कष्ट था। ईश्वर ने कृपा करके उन्हें दुःखमुक्त कर दिया। परमात्मा उनकी आत्मा को शांति दें यही प्रार्थना है। * *

बिहार के शीर्ष सर्वोदय कार्यकर्ता **श्री. विद्यासागरभाई** का देहांत ता. 26 को मुंबई में करीब रात को 8 बजे हुआ। वे हृदय-विकार के मरीज थे। एकाएक छाती में दर्द होने लगा और अस्पताल में जाते ही शरीर शांत हो गया। उनकी उम्र 82 साल की थी।

सन् '49 में जब वे सेवाग्राम में नयी तालीम विद्यालय में आये थे तब विनोबाजी के साथ प्रथम परिचय हुआ। फिर तो उनके चरणों में उन्होंने अपना जीवन ही समर्पित कर दिया। अखंड प्रव्रिज्या करते हुए क्रांति का संदेश गांव-गांव पहुंचाते रहे।

विनोबा के अंतिम निर्देशानुसार मुंबई में देवनार सत्याग्रह में पिछले 28 वर्षों से निष्कंप निष्ठा से वे लगे रहे। अंतरंग मंडल में वे कहते कि इस सत्याग्रह के प्रति मेरी दृष्टि **कार्यं साधयामि वा देहं पातयामि** – की है। भगवान ने अपने भक्त के प्रण की रक्षा की और अंत में अपने क्लांत-श्रांत शिशु को अपने पास बुला लिया।

कहते हैं, पिछले कुछ समय से उनके चेहरे पर एक विशेष कोमलता और प्रसन्नता झलकती थी। मानो ईश्वर के पास जाने की तैयारी चल रही थी। ऐसे आत्मीय साथी को हमारी अंतःकरणपूर्वक श्रद्धांजलि।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुण्यतिथि-पर्व – मित्र-मिलन

प्रिय मित्र,

प्रतिवर्ष 15 नवंबर को पूज्य विनोबाजी की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में मित्र-मिलन का आयोजन होता है। ब्रह्मविद्या-मंदिर के इस परिसर में, जो विनोबाजी की प्रयोगभूमि – साधनाभूमि और समाधि-स्थल रही है, यह मिलन बडी ही सहजता और बिना किसी विशेष प्रयास के संपन्न होता है। वैसे तो महापुरुषों का नित्यस्मरण, उनके बताये विचारों का अनुशीलन अपनेआप में ही मंगलमय और प्रेरणादायक होता है। तो भी एक जीवन-विचार में श्रद्धा रखनेवाले नये-पुराने मित्र परस्पर के अनुभवों-विचारों का आदान प्रदान करें, उनके बीच का भ्रातृभाव और गहरा बने, उसके लिए इस प्रकार के मिलनों की अत्यंत आवश्यकता है।

आज की परिस्थिति में व्यक्तिगत जीवन में, समाज-व्यवस्था में, प्रकृति में अनेक जटिल प्रश्न दिनोंदिन खडे होते जा रहे हैं। उसका निदान भी मर्ज को लाइलाज बना रहा है। ऐसे में दुनिया को आशा की किरण गांधी-विनोबा के विचारों में दीख रही है। अत: उस विचार का तत्त्वसंकीर्तन और भी जरुरी है। वही इस मिलन का स्वरूप है। नवंबर 15-16 दो दिन का यह मिलन रहेगा। सभी मित्र मुक्तता से इसमे सहभागी हो सकें, उसके लिए मिलन का कोई विषय नहीं रखा है।

कृपया अपने आने की सूचना अवश्य देने का कष्ट करें। जिन मित्रों को अपनी सहयोगराशि भेजनी हो, वे 'ब्रह्मविद्या-मंदिर' के नाम से चेक् या ड्राफ्ट भेजें।

सादर

संयोजक
मित्र-मिलन
ब्रह्मविद्या-मंदिर

कंचन

*

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Licensed To Post without Prepayment

रजि. नं. 43696/84

रजि. नं. एस. बी. / डब्ल्यू. डी. ए – 03/2009-2011

लाइसेन्स नं. एन. आर. / डब्ल्यू. डी. ए / डब्ल्यू. पी. पी. 2 /

किव सचिआरा होईए किव कूड़ै तुटै पालि

– हम सच्चे कैसे बनेंगे, और झूठ का पर्दा कैसे टूटेगा, यही मुख्य समस्या है।

हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि

– परमेश्वर के हुक्म से चलना चाहिए, जो भगवान ने हमारे साथ लिख रखा है। नानक कहते हैं, यही सच्चा बनने का रास्ता है।

जपुजी

प्रेषक –

'मैत्री'
ब्रह्मविद्या-मंदिर
पवनार, वर्धा
442111
(महाराष्ट्र)

ग्राहक-संख्या

श्री.